H
818
Sa 59 S

H
818
Sa59S

श्री सन्तराम जी

श्री

सन्तराम जी

Hindi Vibhag

हिन्दी विभाग पंजाब
पटियाला

Library IIAS, Shimla
H 818 Sa 59 S
00021869

Acc No
21869
2/9/84

H
818
Sa59 S

...TITUTE OF ADVANCED S...
No 21869
...ate 10.11.65
S...LA

श्री सन्तराम जी

लेख	लेखक	पृष्ठ
सन्देश		
१. संदेश	श्री यश	१
२. संदेश	श्रीमती रामेश्वरी नेहरू	२
३. श्री सन्त राम जी की साहित्य साधना	आचार्य विश्वबन्धु जी	३
४. स्मित पूर्वाभिभाषी : सन्त राम जी	श्री राहुल सांकृत्यायन	५
५. श्रद्धेय संत राम जी	नि० छ० जमीदार	६
६. मानव-हितैषी श्री सन्तराम जी	गुरदियाल मलिक	१०
जीवन		
७. समाज सुधारक हिन्दी सेवी श्री सन्त राम जी	श्री अखिल विनय एम० ए०	८
८. मेरे कुछ संस्मरण	श्री सन्तराम	१८
व्यक्तित्व		
९. निष्ठावान पंडित सन्तराम	श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार	२३
१०. श्री सन्त राम बी० ए०	प्रो० रघुनन्दन शास्त्री	२५

	लेख	लेखक	पृष्ठ
११.	समाज सुधारक श्री संतराम	डा० रामचरण महेन्द्र	२८
१२.	भाषा के उद्धारक, सुधार के भागीरथ श्री संतराम जी	श्री सोहन लाल शास्त्री	३२
१३.	तब और अब : श्री सन्त राम जी	श्री उमा दत्त	३५
१४.	अपरिचित 'परिचित'	श्री भंवरमल सिंघी	३८
१५.	रेत और कांटों के पथिक : श्री सन्तराम जी	डा० दुर्गादत्त मेनन	४०
१६.	श्री सन्तराम जी—एक परिचय	श्री सत्यपाल गुप्त	४३

कृतित्व

	लेख	लेखक	पृष्ठ
१७.	हिन्दी के प्रवीण लेखक और निर्भीक सेवक श्री सन्तराम जी	श्री ब्रह्मदत्त वेदतीर्थ	४७
१८.	श्री सन्तराम : बच्चों के लेखक	श्री हरी चन्द्र पराशर	५२
१९.	पंजाबी गीतों के संग्रहकार श्री सन्त राम	श्री आशा नन्द वोहरा	५५
२०.	जीवनी लेखक—सन्तराम	श्री ओम प्रकाश "आनन्द"	६५
२१.	श्री सन्तराम	पी० तीरुवेंगदम्	७०
२२.	अभिनन्दन पत्र	डायरेक्टर, हिन्दी विभाग।	७७
२३.	श्री सन्त राम जी द्वारा प्रणीत पुस्तकों की सूची		७९

उपोदघात

भारतीय जन-जीवन में साहित्यकार को सदा से ही एक गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त रहा है । क्योंकि भारतीय आस्था के अनुसार साहित्य का उद्देश्य मनोरंजन नहीं प्रत्युत समाज और व्यक्ति की हित साधना है । किन्तु मानना होगा "कि साहित्य के नाम पर प्राप्त होने वाला समूचा वाङमय" न तो साहित्य है और न सभी लेखक ही साहित्यकार होते हैं । इसलिये आवश्यक है कि प्रत्येक युग में सच्चे अर्थों में साहित्य-रचना करने वाले साहित्यकारों का अभिनन्दन हो जिससे जहां एक साथ सामाजिक कर्त्तव्य की पूर्ति हो वहां उत्कृष्ट साहित्य और साहित्यकारों को प्रोत्साहन मिले ।

भाषा विभाग, पंजाब अपने जन्म-काल से ही इस ओर सचेष्ट है इसके द्वारा जहां पंजाब की भाषाओं के विभिन्न अंगों को मौलिक, अनूदित, साहित्य-रचना द्वारा समृद्ध किया जाता है वहां प्रतिवर्ष इन भाषाओं के एक-एक प्रतिनिधि साहित्यकार को गौरव-पूर्ण रूप में सम्मानित एवं पुरस्कृत भी किया जाता है ।

हमें प्रसन्नता है कि इस बार हिन्दी साहित्यकार के नाते सम्मानित होने वाले महानुभाव श्री सन्तराम जी बी०ए० हैं, जो एक उच्चकोटि के साहित्यक होने के साथ साथ पंजाब में हिन्दी प्रचार और समाज-सुधार आन्दोलन के प्रवर्त्तकों में से एक हैं । आप ऐसे वयोवृद्ध एवं विद्यावृद्ध मनीषी हैं जिनकी साहित्य रचना का एकमात्र आधार सामाजिक उपयोगिता और मनुज-हित चिन्ता है । प्रयास किया गया है कि प्रस्तुत पुस्तिका में श्री सन्तराम जी के व्यापक एवं कर्मनिष्ठ जीवन-साधना को सूत्ररूप में प्रस्तुत किया जा सके ताकि नये साहित्य और साहित्यकारों को प्रेरणा तथा स्फूर्ति प्राप्त हो ।

आशा है कि साहित्य-प्रेमी एवं देश-हितैषी हमारे इस प्रयास का स्वागत करेंगे ।

(लाल सिंह)
डायरैक्टर जनरल,
भाषा विभाग, पंजाब
पटियाला ।

आमुख

उत्कृष्ट साहित्य एवं साहित्यकारों का अभिनन्दन भाषा विभाग, पंजाब की कार्य-योजना का एक महत्वपूर्ण अंग है। इसी लिये विभाग के वार्षिक साहित्य-समारोह पर जहाँ वर्ष भर की सर्वोत्तम घोषित रचनाओं पर अनेक पुरस्कार दिये जाते हैं वहां हिन्दी-पंजाबी के एक-एक सम्मानित पंचनद-वासी साहित्यकार का अभिनन्दन भी किया जाता है। हर्ष का विषय है कि इस वर्ष हिन्दी साहित्यकार के नाते ख्यातनामा लेखक श्री सन्तराम जी बी०ए० का अभिनन्दन किया जा रहा है।

श्री सन्तराम जी पंजाब के एक ऐसे वयोवृद्ध एवं महारथी लेखक हैं, जिनका नाम आज भारत-व्यापी प्रतिष्ठा का केन्द्र बन चुका है। कुल मिलाकर ७४ रचनाओं के लेखक होने के साथ साथ आपने समाज-सुधार और भाषा प्रचार के क्षेत्र में भी जो सराहनीय कार्य किया है, उसके फलस्वरूप आज वह एक व्यक्ति न रह कर अपने आप मे एक व्यापक एवं बहुमुखी संस्था का रूप ले चुके हैं। कोमलमति बालकों के लिये वह सरल भाषा में महापुरुषों की जीवनियां सुनाने वाले चरित-लेखक भी हैं तो जोशीले नवयुवकों के लिये वह "हमारा समाज" के ऐसे प्रबुद्ध लेखक हैं जिन्होंने हिन्दू-समाज की कुरीतियों को निरावरण कर उन्हें दूर करने के लिये क्रान्तिकारी उपाय भी सुझाए हैं। इन्हीं उपायों में एक है जात-पांत तोड़क आन्दोलन—इसी लिये भारत के सुधारक क्षेत्रों में उनकी चर्चा उग्र सुधारवादी के रूप में होती है। सामूहिक रूप में हम कह सकते हैं कि वह एक ऐसे बहुमुखी व्यक्तित्व के स्वामी हैं जिसमें एक साथ मौलिक-लेखन, अनुवाद-कार्य, समाज-सुधार, ऐतिहासिक शोध, और लौकिक उपयोगिता अपने रोचक-रूप मे प्रकाशमान है।

ऐसे बहुमुखी जीवन के विभिन्न पक्षों को इस पुस्तिका रूप में प्रस्तुत कर सकना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य था किन्तु फिर भी यथासंभव, प्रयास किया गया है कि श्री सन्तराम जी क व्यक्तित्व और कृतित्व की रूपरेखा इस पुस्तिका द्वारा मुखरित हो। आशा है साहित्य-जगत हमार इस प्रयास का स्वागत करेगा।

परमानन्द,
डायरैक्टर
हिन्दी विभाग, पंजाब, पटियाला।

११ मार्च, १९६१।

सन्देश

साहित्य-संग और समाज सुधार प्रायः अलग अलग कार्य-क्षेत्र समझे जाते हैं, परन्तु श्री संतराम जी की सतत् साधना में दोनों का समन्वय है। "नेह निभाग्न एवं रस" के "महाकठिन व्यवहार" को अपन जीवन में चरितार्थ करते हुए उन्होंने एक आदर्श उपस्थित किया है। समाज सुधार के लिये तड़प और हिन्दी के प्रति अनुराग उनमें तब जागा, जब इन का महत्व कम समझा जाता था—यही एक तथ्य उनकी महानता का प्रमाण है।

साहित्यिक क्षेत्र में श्री संतराम जी ने केवल बहुमूल्य ग्रंथों का सृजन ही नहीं किया, अपितु ऐसे विषयों पर लिखा है, जो प्रायः उपेक्षित रहते हैं। मां-भारती का भण्डार भरने में जिन पंजाबियों ने जीवन-भर तपस्या की है, उनमें श्री संतराम का नाम प्रमुख है।

यश

उप शिक्षा मन्त्री पंजाब।

हरिजन-निवास, किंग्सवे दिल्ली–९
दिनांक २–३–६१

हिन्दी विभाग, पंजाब सरकार ने, पंजाब के सुविख्यात साहित्यकार श्री संतराम को सम्मानित करने का निश्चय किया है, इसका मैं स्वागत करती हूँ। 'विश्व-ज्योति' मासिक पत्रिका में, श्री संतराम जी के प्रभावशाली लेख छपते रहते हैं। इनकी शैली तथा भावात्मक लेख जन प्रिय हैं। संयुक्त पंजाब में इन्होंने 'जातपात तोड़क मंडल' स्थापित करके समाज सेवा का सराहनीय कार्य किया है, जिससे मुझे भी सेवा करने का अवसर मिला था। सचाई यह है कि इन्होंने साहित्यक तथा सामाजिक, दोनों क्षेत्रों में यथेष्ट सेवा की है। यह समाज और सरकार के मान के अधिकारी हैं। इनको सम्मानित करके सरकार ने अपना एक कर्त्तव्य पूरा किया है।

ईश्वर इन्हें शक्ति दे कि यह सेवा साहित्य तथा समाज की चिरकाल तक कर सकें।

भवदीया

(रामेश्वरी नेहरू)

श्री सन्तराम जी की साहित्य-साधना

आचार्य विश्वबन्धु जी

आज से लगभग आधी शताब्दी पहले श्री सन्तराम जी ने बी०ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। उस परीक्षा के लिए आपने जो विषय पढ़े, उन में फारसी भाषा भी थी। तब तक आप हिन्दी भाषा का विशेष अभ्यास नहीं कर पाए थे। परन्तु आर्य-समाज के साथ आपका विशेष संसर्ग हो चुका था। उसी के फलस्वरूप आपके हृदय में भारत माता की सेवा करने की भावनाएँ पैदा हो रही थीं। भारतीय विद्या, सभ्यता और संस्कृति के प्रति आपकी परम भक्ति थी। आपका यह दृढ़ विश्वास था कि भारत अपने भिन्न-भिन्न भागों में भावनात्मक एकता की स्थापना द्वारा ही खोई हुई स्वतन्त्रता को पुनः प्राप्त कर सकेगा और उसे सँभाल सकेगा। इसके लिए एक मुख्य साधन के रूप में देश की अधिकतम व्यापक भाषा होने के नाते हिन्दी भाषा को सभी प्रदेशों में प्रचरित करना तथा सारी जनता द्वारा आपस के व्यवहार में उसका अपनाया जाना आपको अत्यावश्यक जान पड़ता था। लिखने की ओर आपकी प्रवृत्ति पहले से ही थी। अब उक्त आभास जागृत हो पड़ने से आपने हिन्दी में लिखना आरम्भ कर दिया। यह देश के सौभाग्य की बात थी कि कुछ ही दिनों में आपकी निष्ठा से प्रसन्न होकर उन दिनों के प्रमुख हिन्दी-लेखक सम्पादकाचार्य श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी ने आपके लेखों का संशोधन करना स्वीकार कर लिया। फलतः आपने धीरे-धीरे देश भर के प्रमुख गद्य-लेखकों में अपना स्थान बना लिया जिस पर आप अब बहुत वर्षों से योग्यता पूर्वक प्रतिष्ठित चले आते हैं। आपने इस सुदीर्घ काल में सैंकड़ों नहीं, सहस्रों लेख लिखे हैं, जिन्हें प्रायः सभी प्रदेशों के पत्रकार बड़े मानपूर्वक अपने पत्रों में प्रकाशित करते रहे हैं। आपके लिखे और तब तक प्रकाशित हो चुके ग्रन्थों की भी संख्या साठ से ऊपर ही होगी। आपकी गणना पंजाब के प्राथमिक हिन्दी पत्रकारों में होती है। आपने १९१४ में "उषा" और १९३३ में "युगान्तर" नामक मासिक पत्रिकाएँ चालू की थीं। यह खेद की बात है कि वे अधिक समय तक न चल पाईं। अब १९५२ से आप विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान, होशियारपुर की मुख-पत्रिका "विश्वज्योति" के सह-सम्पादक के रूप में इस ओर विशेष मनोयोग दे रहे हैं।

साहित्य और वाङ्मय पर्याय हैं। परन्तु सभी वाङ्मय साहित्य नहीं होता। किसी विशेष रसात्मक भाव के आवेशवश हृदय उद्दीप्त और उत्कम्पित होकर जिस विशिष्ट वाग्-विलास के माध्यम से अभिव्यक्त सा हो पाता है, केवल वही वाङ्मय साहित्य कहला सकता है। श्री सन्तराम जी ने जीवन भर जिस साहित्य की साधना के लिए तपस्या की है वह सदा आपके हृदय की एक-न-एक गहरी कसक, तीव्र तड़प और अदम्य वेदना को ही

झलकाता है। देश की राजनीतिक परतन्त्रता, सामाजिक विषमता, बौद्धिक ग्रन्धता ग्रौर साम्प्रदायिक संकीर्णता से ग्राहत ग्रौर व्यथित होकर ग्रापका हृदय ही, मानो, ग्रापके मँजे ग्रौर नपे तुले हुए गंभीर गद्य-लेख के रूप में उमड़-उमड़ कर बाहिर टपक पड़ा है। ग्रापने लिखा है ग्रौर पर्याप्त लिखा है। परन्तु जो लिखा है वह लख के पदप्रबन्ध का रसासवादन मात्र करवाने के लिये नहीं, वरन् ग्रपने हृदय की धधकती हुई भट्ठी का गुवार कम करने के लिए ग्रौर सामाजिक कुप्रथाग्रों तथा ग्रन्याययुक्त दुर्व्यवहारों के दबाव से कष्टापन्न हुई दीन, हीन जनता को सान्त्वना देते हुए उसका दुःख हरने के लिये। ग्रतः ग्रापके साहित्य की महत्ता उसकी शाब्दिक सज्जामात्र तक सीमित नहीं रही। ग्रापके परम ध्येय तो समाज का सर्वांगसुन्दर सुधार है ग्रौर तदनुरूप साहित्य का सृजन उसके लिए एक साधन मात्र है। ग्रापकी लेखनी से उतरी प्रत्येक शब्दयोजना पर निरन्तर गहरी छाप पड़ती रही है ग्रापकी तर्कनिष्ठ बुद्धिवादिता की, ग्रापकी सब प्रकारों की मिथ्या विश्वासों के उन्मूलन में लगी सत्यार्थपरायणता की, ग्रापकी सब प्रकार की साम्प्रदायिक संकीर्णता से ऊपर उठ रही विश्वमानवता ग्रौर विश्व-नागरिकता की। ग्रापका साहित्य क्या है ? मानो, मानवता का एक संदेश-वाहक है ग्रौर विश्व विकास का एक ग्रग्रदूत।

७-३-१९६१

स्मित पूर्वाभिभाषी : सन्त राम

श्री राहुल सांकृत्यायन

पं० सन्तराम जी से मेरा परिचय चौंतीस वर्ष से ज्यादा पुराना है। उनमें एक विचित्र सादगी-भरा सौजन्य है जिससे आदमी पहली ही मुलाकात में आत्मीय सा अनुभव करने लगता है। जितना समीप से देखें उतने ही वह मधुर लगते हैं। मार्शल ला के दिनों में मैं उन के गांव पुरानी बस्सी में कितने ही दिनों रहा। उनसे बात करने में ऊबने का सवाल नहीं आता। बड़ी रोचक बात करते हैं।

हिन्दी की तो वह उससे भी पहले से सेवा करते हैं। उन्होंने अपने लेखों द्वारा हमशा हिन्दी वालों की कूप मंडूकता दूर करने की कोशिश की क्योंकि हिन्दी से बाहर भी बहुत सी चीज़ें सीखने की हैं। आपने जिस को अच्छा समझा उसमें लग गए और पूरे जी जान से। नये हिन्दी सेवियों को उनसे बहुत सी बातें सीखने को मिल सकती हैं। मुझे उनका पुराना चेहरा भी याद आता था। हमेशा स्मितपूर्वाभिभाषी रहे। अभी मैं जो साल पार के मिला तो चेहरे पर तो वही स्मित पूर्वाभिभाषिता थी पर बाल सफेद हो गये थे। हर बार उनसे मिल कर बड़ी प्रसन्नता होती है पर पहले जैसे उन दिनों का समागम दुर्लभ है। अभी भी शरीर और मन से वें स्वस्थ हैं। । शुभकामना है कि वह शतायु से भी अधिक जिएं और अपने साहित्यिक जीवन के अनुभव लिख जायें।

बड़े खुश पसन्द हैं जो उनके मुस्कराते चेहरे के अनुकूल हैं।

वह शरीर से बूढ़े भले ही हों पर उनके मन से जवानी दूर नहीं हुई। उसी तरह काम करते हैं। वैसे ही घूमते हैं।

अब भी उनके लेख बूढ़ों जैसे नहीं होते। मैं समझता हूँ इक्कीसवीं सदी में भी वह इसी सदी के जैसे मालूम होंगे नित्य नव नव !

सिंहल द्वीप
१-३-७१

श्रद्धेय संतराम जी

नि. छ. जमीदार

मैं उन व्यक्तियों में से हूँ जिन्हें श्रद्धेय संतराम जी के प्रत्यक्ष दर्शन का सौभाग्य मिला है।

श्रद्धेय संतराम जी के विविध विषयों पर लेख तथा उनकी पांडित्यपूर्ण पुस्त‍ भारतीय समाजशास्त्र को एक नया रूप दिया है। उनके साहित्य में समाज का वास्त विश्लेषण, इतिहास तत्व की पकड़, तथा नैतिक मूल्यों की पीठिका के दर्शन होते हैं। कारण यह साहित्य स्थायी महत्व का बन जाता है।

मेरी मान्यता है कि 'हमारासमाज' पुस्तक जिस उत्कटता से भारतीय संघटन प्रतिपादन करती है उतनी और कोई पुस्तक नहीं।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के पहले और फिर उसके साथ-साथ कुछ वर्षों तक सम सुधार सभा होती थी। वह सभा तो देश के दुर्भाग्य से समाप्त हो गई पर उसकी प आज भी श्रद्धेय संतरामजी में जीवित है।

पंजाब सरकार ने इस श्रेष्ठ मौलिक विचारक तथा नैतिक पुनरुत्थान के कर्मयो सत्कार कर अपना कर्त्तव्य पूरा किया है। मेरा विश्वास है कि केन्द्रीय सरकार भी संतरामजी की अखिल भारतीय समाज सेवा का शीघ्र सम्मान कर अपना कर्त्तव्य करेगी।

मैं श्रद्धेय संतराम जी तथा पंजाब सरकार का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

२-३-१९६१

मानव-हितैशी श्री सन्त राम जी

"Shri Sant Ram is indeed a true saint not only in his idealism or ideology, but also in action. For, a true saint is he who has the faith that all life is one, and who is dedicated to the noble cause of practising the gospel of the unity of humanity. In a country, unfortunately still ridden with the curse of casteism and creedalism, Sant Ram Ji's life has been like a lighted lamp, giving the light of love to all. My heart's homage then to this shining servant of mankind."

Harijan Ashrama,
Ahmedabad—13 (Gujrat)

Gurdial Malik
2-3-1961.

समाज सुधारक हिन्दी सेवी : श्री संतराम जी

श्री अखिल विनय एम. ए.

बारह वर्ष व्यतीत हो गए तब "हमारा समाज" पुस्तक पढ़ उसकी विस्तृत समीक्षा मैंने इलाहबाद से प्रकाशित साप्ताहिक "देशदूत" में छपवाई थी। यह एक पुस्तक ही श्री सन्तराम जी के विचार-दर्शन को समझने के लिये पर्याप्त है। लगभग सवा सौ ग्रंथों के आधार पर लिखित इस कृति में आपका हृदय प्रतिविम्बित हुआ है। स्पष्ट है कि इस हिन्दी सेवी की साहित्य-सेवा कल्पना के घोड़े पर सवार होकर नहीं, प्रत्युत जीवन-सागर में गहरा प्रवेश पाकर एक विशिष्ट उद्देश्य को लेकर की गयी है। आपके दिल में समाज के अभ्युत्थान की प्रबल भावना है, एक तड़प है जो लेखनी के द्वारा आप व्यक्त करते रहे हैं। बी०ए० तक इन्होंने फारसी ही पढ़ी, किन्तु ऋषि दयानन्द की भक्ति से जब ये आर्य-भाषा (हिंदी) की ओर झुके तो उसी के हो रहे।

श्री सन्तराम जी के ७४ वर्षों की जीवन-गाथा गाथा मात्र नहीं, एक प्रकार से वह आधुनिक भारत में जाति-भेद-निवारण और पंजाब में हिन्दी प्रचार का इतिहास है। कालेज के तीसरे वर्ष तक जिस व्यक्ति को नागरी अक्षरों का ज्ञान तक न हो और जो तब तक फारसी को सब से अधिक मधुर भाषा, फारस को सब से अधिक सुन्दर देश, शेखसादी, उमर खैयाम और फिरदौसी को ही सबसे बड़े कवि समझता रहा हो, वही आगे चल कर हिन्दी और भारतीय संस्कृति का कट्टर हिमायती बन गया। बस यही सन्तराम जी की हिन्दी-सेवा का ठोस प्रमाण है। उन दिनों पंजाब फारसी और उर्दू का गढ़ था। आर्य समाज का प्रमुख पत्र "सद्धर्म प्रचारक" भी उर्दू में ही था जो महात्मा मुंशीराम (बाद मे स्वामी श्रद्धानन्द) द्वारा सम्पादित होता था। हमारे चरितनायक उस पत्र के पाठक थे और एक दिन उस पत्र ने घोषणा की कि अमुक तिथि से यह पत्र हिन्दी में निकलेगा। आपने हिन्दी तो सीख ही ली, सन् १९१२ में ही "हिन्दी भाषा और नागरी अक्षरों की उन्नति के उपाय" पर एक निबन्ध भी लिखा, जिस पर काशी नगरी प्रचारिणी सभा ने इन्हें 'राधाकृष्ण दास स्मारक रजत पदक' दिया। १९१६ में उक्त सभा ने 'स्कूलों की स्वास्थ्य रक्षा" विषय पर निबन्ध के लिए "छन्नूलाल स्मारक स्वर्णपदक" आपको अर्पित किया।

श्री सन्तराम जी को हिन्दी में लिखने की प्रेरणा आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से मिली और वे आपके लेखों को संशोधित रूप में 'सरस्वती' में छापते रहे। फिर तो आप

—: जीवन :—

उस जमाने को अन्यान्य पत्रिकाओं'पांचाल पण्डिता' (जालन्धर) 'चांद' (लाहौर), 'सद्धर्म-प्रचारक' (गुरुकुल कांगड़ी) के प्रतिष्ठित लेखक ही बन गये। आपने १९१४ में लाहौर से 'उषा' नामक मासिक पत्रिका भी निकाली और १९२० में जालन्धर कन्या महाविद्यालय की पत्रिका 'भारती' का सम्पादन किया। फिर तो आप अपने मिशन में प्राणापण से लग गए और 'जात-पांत तोड़क मण्डल' (लाहौर) की दो मासिक पत्रिकाओं "क्रान्ति" (उर्दू) और 'युगान्तर' (हिन्दी) का वर्षों सम्पादन करते रहे।

हिन्दी को आपने सदैव समाज-सेवा का प्रबल माध्यम माना है। २९ दिसम्बर १९४१ को अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के ३०वें वार्षिक अधिवेशन में साहित्य परिषद् के स्वागताध्यक्ष के नाते, अबोहर (फिरोज़पुर) में आपने कहा था :

"साहित्यिक का जो अर्थ आज-कल लिया जाता है, उस अर्थ में मैं साहित्यिक नहीं हूँ। मेरा कार्य- क्षेत्र अधिकतर सामाजिक सुधार है। × × × मेरी धारणा है कि हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है। यह समूचे राष्ट्र को एकता के सूत्र में बांध सकती है। यह हमें भारत-भूमि से प्रेम करना सिखाती है। यह गंगा और यमुना पर, हिमाचल और मलयाचल पर, राम और कृष्ण पर, वशिष्ठ और बाल्मीकि पर हमारा प्रेम एवं भक्ति बढ़ाती है। यह भारत की अपनी भाषा है। × × × × × × यह किसी विदेशी लिपि में नहीं, वरन् भारत की अपनी ही लिपि में लिखी जाती है। यह भारतीय संस्कृति, भारतीय विचार-परम्परा और भारतीय तत्वज्ञान की भाषा है। जैसे कोई अंग्रेज़ चाहे वह वेल्ज़ में रहता है और चाहे न्यूज़ीलैण्ड में—ऐसा नहीं हो सकता जिसे अपनी अंग्रेज़ी भाषा पर प्रेम एवं गर्व न हो, वैसे ही जिस भारतवासी को हिन्दी-भाषा पर प्रेम नहीं, वह भारतीय कहलाने का अधिकारी नहीं। ऐसे ही विचार थे जिनकी प्रेरणा से मैंने उर्दू—फारसी का मोह छोड़ कर हिन्दी को अपनाया है।"

हिन्दी के बारे में इससे स्पष्ट विचार धारा और क्या हो सकती है? अबोहर के उसी सम्मेलन में आपने पंजाब में हिन्दी और हिन्दी-साहित्यकारों के विषय में भी डंके की चोट से यह कहा था:—

> "हिन्दी-भाषी अथवा हिन्दी-प्रधान प्रान्तों में सम्मेलन के सामने हिन्दी-साहित्य की उन्नति का प्रश्न हो सकता है। परन्तु पंजाब जैसे प्रान्त में जहाँ हिन्दी को जान के लाले पड़े हुए हैं, जहाँ न्यायालय में तो उसे कभी स्थान मिला ही नहीं स्कूलों और कालेजों में से भी उसे निकाला जा रहा है, वहां हमारे सामने सब से पहले हिन्दी के पांव जमाने का प्रश्न है। हिन्दी के पांव जम जाने पर, कालान्तर में, यहां साहित्य का सर्जन आप से आप होने लगेगा।"

श्री सन्तराम जी की हिन्दी-सेवा का क्षेत्र सदैव पंजाव रहा है। यहीं रह कर आपने अनकानेक पुस्तकें लिखी हैं। संयुक्त पंजाव सरकार ने आपको 'अलवेरुनी का भारत' पर १२०० और 'इत्सिंग की भारत यात्रा' पर ६०० पुरस्कार दिया था। सन् १९५४ में केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालय ने भी आपको प्रथम पुस्तक पर १००० का पुरस्कार दिया। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति (वर्धा) ने भी १९ जुलाई को आप की हिन्दी-सेवा के उपलक्ष्य में १५०१) का "महात्मा गांधी पुरस्कार" भोपाल में प्रदान किया। आज आपके द्वारा लिखी गयी और अनूदित कृतियों की संख्या ७३ है।

आपने ही हिन्दी-साहित्य में कई नूतन प्रवृत्तियों का सूत्रपात किया है। सव से पहले आप ही ने नवम्बर मन् १९२४ में "कुछ पंजावी गीत" प्रयाग की प्रसिद्ध पत्रिका "सरस्वती" में छपवाए थे। जनता द्वारा वे वहुत पसन्द किये गए और परिणामस्वरूप आपका पंजाबी नारी-गीतों का संग्रह १९२६ में ही प्रकाशित हुआ था। उसके पश्चात् ही अन्य लोगों ने अपने प्रदेशों के लोक-गीतों के संग्रह तैयार किये। इसी प्रकार आपने जनता के लिये १९२६ में ही परिवार-नियोजन का नारा बुलन्द किया था और "दम्पत्तिमित्र" नाम से उस वर्ष अंग्रेजी पुस्तक "कण्ट्रासप्शन" का अनुवाद प्रकाशित कराया था। आज तो स्वयं सरकार भी इस दिशा में सचेष्ट है, पर उस समय अनेक लोगों ने इसकी निन्दा की थी तथा इसे अश्लील बताया था।

वस्तुतः आप एक क्रांतिकारी साहित्यकार हैं। आपने जनवरी सन् १९३२ में 'युगान्तर' नाम का एक हिन्दी मासिक-पत्र निकाला था, जो चार वर्ष तक निकलता रहा। यह 'जात-पांत तोड़क मण्डल' का मुख पत्र था, जिसकी स्थापना आपने ही की थी। इसके द्वारा आपने एक क्रांति का सूत्रपात किया। मण्डल ने सन् १९३१ की जनगणना में तथा कालेजों और विश्वविद्यालयों के फार्मों में से भी "जाति" का स्तम्भ निकाल देने का प्रवल आन्दोलन किया था। श्री सन्तराम जी के अथक उद्योग से २८ दिसम्बर १९२९ को लाहौर में कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर सम्पादकाचार्य श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय की अध्यक्षता में मण्डल का एक विशेष सम्मेलन आयोजित किया गया था, जिसमें डा० प्रफुल्लचन्द्र राय और श्री मोतीलाल नेहरू आदि गण्यमान्य नेताओं के भाषण भी हुए। १३ अप्रैल १९४४ को अवोहर में और बाद को रामामण्डी में श्री सन्तराम जी की अध्यक्षता में ही जांत-पांत तोड़क सम्मेलन हुए। वैस तो ये प्रति वर्ष ही आयोजित किये जाते रहे थे।

समाजसेवी सन्तराम जी के जीवन का निचोड़ उन्हीं के द्वारा लिखित इन पंक्तियों में सिमट आया है :—

"मेरी धारणा है कि राष्ट्र के लिये मरना उतना कठिन नहीं, जितना कि राष्ट्र के लिये जीना। जब कोई मनुष्य किसी विदेशी शासन के विरुद्ध

आन्दोलन करता है तब सारा देश उसकी पीठ पर होता है। हिन्दू-मुसलमान सिख, ईसाई और पारसी सब उसको सहायता देते और उसका स्तोत्र-गान करते हैं। जब पकड़ा जाकर वह फांसी के तख्ते पर लटकाया जाता है तो समाचार पत्रों में उसके फोटो छपते हैं और स्थान-स्थान पर उसके स्मारक बनाए जाते हैं। इसके विपरीत जब कोई मनुष्य जात-पांत को मिटाने जैसा कोई सामाजिक सुधार का काम करता है तो परायों का तो कहना ही क्या स्वयं उसके अपने बन्धु-बान्धव भी उसका तिरस्कार एवं विरोध करते हैं। उसके फोटो समाचार-पत्रों में नहीं छपते। उसका कोई स्मारक नहीं बनाया जाता। उसे आयु भर जीते जी चिता में जलना पड़ता है। किन्तु उसकी इस लम्बी तपस्या के प्रताप से राष्ट्र की नींव सुदढ़ हो जाती है और राष्ट्र अपनी दुर्बलताओं से छुटकारा पाकर सुख और स्वाधीनता का उपभोग करने में समर्थ हो जाता है। कहें तो कह सकते हैं कि राजनीतिक हुतात्मा नभमण्डल में चमकने वाली बिजली के समान होता है। इसका प्रकाश तो बहुत बड़ा और चकाचौंध कर देने वाला होता है, परन्तु उस प्रकाश में बैठ कर आप न पढ़ लिख सकते हैं, न खाना बना सकते हैं और न ही कपड़ा सी सकते हैं। इसके विपरीत समाज-सुधारक का जीवन एक दीपक के समान होता है। दीपक का प्रकाश बहुत बड़ा नहीं होता, वह दूर-दूर तक नहीं पहुंचता, परन्तु उसमें बैठकर आप काम कर सकते हैं, पढ़-लिख सकते हैं और खाना बना सकते हैं।"

साधन-संबल-विहीन परिस्थितियों में जीवन से जूझते हुए ही श्री सन्तराम जी पले, पढ़े और आगे बढ़े। इनकी दुबली-पतली काया ने ७४ बसन्त और पतझड़ देखे हैं। पंजाब के विभाजन ने उनके व्यवस्थित जीवन की शृंखला तोड़ डाली परन्तु हारना किसे कहते हैं, यह आपने जाना ही नहीं। आज भी ठहाके मारकर हँसना उनकी जिन्दादिली का जीता-जागता सबूत है। जीवन में आपने अनेक उतार-चढ़ाव देखे हैं। किन्तु आप सदा जीवन-पथ पर बढ़ते चले आये हैं। मुझे इन्हें अत्यन्त निकट से देखने का अवसर मिला है इसलिये विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि अपने प्रियजनों पर इन की स्नेह धारा अविरल बहती रहती है। जिसने जांत-पांत तोड़ने के लिये कुछ किया, जाति बंधनों से मुक्त हो कर विवाह किया या समाज-सुधार का कोई भी कार्य किया वह इनका अपना हो गया। इस रहस्य को पूरी तरह जानने के लिये इनके जीवन के बारे में कुछ अन्य जानकारी भी आवश्यक है।

जन्म और बाल्यकाल

होशियारपुर नगर से लगभग दो मील दूर पूर्व दिशा में "पुरानी बसी" नाम का एक छोटा-सा गांव है। गांव की जनसंख्या अधिक नहीं, मकान सभी पक्की ईंटों के हैं।

लगता है कि किसी समय यह किसी बड़े नगर का भाग रहा होगा। मुगल काल की एक पुरानी मसजिद, एक पुराना कुआं और गांव के इर्द-गिर्द टूटी-फूटी प्राचीर मौजूद है। एक बार यहाँ खेतों में हलवाहों को पुराने सिक्के और आभूषण भी दवे मिले थे और एक स्थान पर मिट्टी की ईंट पर बनी एक जैन मूर्ति भी प्राप्त हुई थी।

पुरानी वसी की हिन्दू जनता में अधिकतर कुम्हार जाति के लोग ही हैं, जिन पर "कुम्हार" का लेवल ही लगा है, मिट्टी क वर्त्तन आदि ये नहीं बनाते। इसी गांव में ४ फाल्गुन संवत् १९४३ विक्रमी (तदनुसार फरवरी सन् १८८७) में श्री रामदास गोहिल तथा श्रीमती मालिनी देवी के यहां दूसरी सन्तान के रूप में एक पुत्र का जन्म हुआ, जिसका नाम सन्तराम रखा गया। इनके पिता ने दो विवाह किये थे और प्रथम पत्नी से शिवराम और लक्ष्मणदास नामक दो पुत्र थे। उसके देहान्त के बाद दूसरा विवाह किया। दूसरी पत्नी से पांच पुत्र तथा एक पुत्री हुई। इनके नाम ये थे :—नन्दलाल, सन्तराम, नत्थूराम तुलसीराम, द्रौपदी देवी और दौलतराम। श्री सन्तराम जी की ननिहाल हिमाचल प्रदेश में मण्डी राज्य के अन्तर्गत पुग नामक स्थान में थी और पिता के पूर्वज अमृतसर जिला-न्तर्गत गोहिलवड़ स्थान से आकर वसे थे। वैसे आपके पिता लद्दाख और सिकियांग के अंतर्गत यारकन्द के व्यापारी थे तथा इसी लिये तीन-तीन, चार चार वर्ष उधर ही ठहरे रहते थे। साम्यवादी रूस के प्रभुत्व से पूर्व आपके चार भाई भी मध्य एशिया में ही व्यापार करते रहे थे।

श्री सन्तराम जी की प्रारम्भ से ही अध्ययन में रुचि थी। अपने गांव के निकट ही वजवाड़ा स्कूल से आपने २५ मार्च १८९९ को पांचवीं कक्षा पास कर के दो रुपए मासिक की मिडिल स्कूल छात्रवृत्ति प्राप्त की तथा इसी प्रकार १ मई १९०२ को मिडिल परीक्षा उत्तीर्ण करके चार रुपए मासिक की छात्रवृत्ति ली और जालन्धर के नगर पालिका स्कूल से ही जून १९०४ में ऐण्ट्रेन्स परीक्षा में सफल रहे। आपने १९०९ में लाहौर के गवर्नमेंट कालेज से बी०ए० पास किया। बी०ए० पास में अपनी कक्षा में फारसी में प्रथम रहने के कारण इन्हें पारितोषिक भी मिला था। आज ५२ वर्षों के पश्चात् भी आप "सन्तराम, बी०ए०" के नाम से ही प्रख्यात हैं। १९०९ के पश्चात् देश में लाखों ही व्यक्तियों ने बी०ए० की उपाधि प्राप्त की होगी और उनमें वहुत से आपके नाम-राशि भी रहे होंगे परन्तु यह उपाधि ही आपके नाम की बोधक बन गयी है। आपके अतिरिक्त हिंदी की सेवा करने वालों में दो "बी० ए०" और भी प्रसिद्ध हैं—स्वर्गीय बाबू श्यामसुन्दर दास बी० ए० तथा स्वर्गीय लाला सीताराम बी० ए०।

जीवन-प्रवाह

१९०९ में ग्रेजुएट बनने के बाद श्री सन्तराम जी दो वर्ष तक अमृतसर जिल के अन्तर्गत चभाल के मिडिल स्कूल में प्रधानाध्यापक रहे। फिर वजवाड़ा (होशियारपुर)

में भी लगभग डेढ़ वर्ष शिक्षक रहे। आपके दूसरे भाई व्यापार में हजारों के वारे-न्यारे करते हों, तब आप अध्यापक वृत्ति से ही क्योंकर संतुष्ट रहते? आप सतलुज फ़ॉरेस्ट कम्पनी में रामपुर बुशहर चले गए। यह सन् १९१३ की बात है।

रामपुर में रहते हुए कम्पनी के कार्य के अतिरिक्त आप अपना शेष समय पुस्तकें पढ़ने में ही बिताते। वहां भी बड़े अध्यवसाय से हिन्दी सीखने का कार्य आपने जारी ही रखा। रामपुर बुशहर के प्रवास-काल में हिन्दी-पुस्तकें पढ़ने का जो चस्का लगा, वह बढ़ता ही गया। एक दिन उन्होंने अपने मित्र और कालेज के सहपाठी श्री भगवानदास का बुलावा पाकर नौकरी छोड़ दी तथा लाहौर की राह पकड़ी। वहां से हिन्दी की पत्रिका निकालने का विचार बना और जनवरी १९१४ में 'उषा' नामक पत्रिका का पहला अंक लोगों के हाथों में था।

उन दिनों पंजाब में हिन्दी का प्रचार था ही कहां। दो चार आर्य-समाजी स्कूलों के सिवा हिन्दी पढ़ाने की व्यवस्था भी कहीं नहीं थी। आपके पास पूंजी नहीं के बराबर थी, पर पत्र निकालने का उत्साह और साहस दिल में था। लेखनी में ताकत थी, किंतु देश में तो विदेशी शासन था। विश्वयुद्ध आरम्भ हो गया था। 'उषा' से ५००) की जमानत मांग ली गयी। जमानत तो दे दी गयी परन्तु पर्याप्त ग्राहक संख्या के अभाव में पन्द्रह अंकों के बाद अप्रैल १९१५ में 'उषा' बन्द हो गयी। यह था श्री सन्तराम जी के साहित्यिक जीवन का उषः काल।

श्री सन्तराम जी का विवाह तो १३ वर्ष की आयु में ही हो गया था। इनकी धर्म-पत्नी भी लाहौर में साथ ही थीं। आर्थिक विपन्नावस्था में सभी कठिनाइयाँ एक साथ ही टूट पड़ती हैं। कुछ समय के लिये इन्हें उर्दू मासिक "आर्य मुसाफिर' में काम मिल गया, पर इनके एक उग्र लेख के कारण प्रकाशक पर जुर्माना हो गया और फलस्वरूप यह पत्र भी बन्द हो गया। फिर कुछ समय के लिये गुरुदासपुर ज़िले के बहरामपुर स्थान में आर्य मिडिल स्कूल की प्रधानाध्यापिकी मिली, किंतु वह भी छोड़नी पड़ी। कुछ मित्रों के सहयोग से लाहौर जिले में ही पट्टी स्थान में कृषि आश्रम खोला गया और ये भी उसमें सम्मिलित हुए। हड्डी की खाद को लेकर भयंकर ऊहापोह हुआ और इन्हें पट्टी छोड़ कर १९१६ में अपने जन्म-ग्राम पुरानी बसी में ही आना पड़ा।

उस समय इनकी आर्थिक स्थिति ऐसी थी कि अपने बड़े भाई के ज्येष्ठ पुत्र की बारात में भी सिर्फ उचित कपड़े-लत्तों के अभाव के कारण ही आप शामिल न हो सके। लाहौर से जब यह घर लौटे तो अपने बाग में ही खेती करने का निश्चय किया। आमदनी कम थी और परिवार में पत्नी के अतिरिक्त चार वर्ष का पुत्र वेदव्रत तथा छै मास की पुत्री गार्गी भी थीं। उन दिनों इन्हें अपनी पत्नी के कुछ गहने तक भी बेचने पड़े। स्वर्गीय स्वामी सत्यानन्द जी के प्रयत्न से जालन्धर से प्रकाशित पत्रिका "भारती" का सम्पादकत्व इन्हें मिल गया। ११०) मासिक पर १९१९ में ये जालंधर पहुंचे। पंजाब में तब भी

हिन्दी का प्रचलन इतना न था। जनवरी १९२० में 'भारती' का प्रथम और अक्तूवर १९२१ में अंतिम अंक निकला। वाईस मास के वाद आर्थिक हानि उठाने की क्षमता कन्या महाविद्यालय में न थी। आजीविका की समस्या फिर मुंह बाये खड़ी थी।

भाई परमानन्द जी काले पानी से छूट कर आ चुके थे और उन्होंने लाहौर में एक कौमी महाविद्यालय खोल रखा था। श्री सन्तराम जी को वहीं हिन्दी-अध्यापन का कार्य मिल गया किन्तु सन् १९२४ के मध्य में वह काम भी छूट गया। संस्था की आर्थिक स्थिति खराव हो चली थी। इधर इनकी पहली पत्नी गंगादेवी को क्षय रोग ने ग्रस लिया। लाहौर से फिर गांव का रास्ता नापा। काफी चिकित्सा करायी, किंतु १७ जून १९२४ को वे भी चल वसीं।

जीवन का मोड़

नौकरियाँ वहुत कीं, कई तरह की कीं, परन्तु स्थिति में सुधार न हुआ। अन्ततः उन्होंने भविष्य में कभी नौकरी न करने का संकल्प कर लिया और स्वतंत्र लेखन का सहारा ढूंढा। १९२४ से आज तक श्री सन्तराम जी स्वतन्त्र लेखन-वृत्ति से ही अपना निर्वाह कर रहे हैं।

आपने "विधि का विधान" शीपक से श्री प्रेमचन्द के सम्पादकत्व में प्रकाशित "हंस" के आत्म-कथा अंक' (जनवरी-फरवरी १९३२ ई०) में अपनी पत्नी वियोग के पश्चात् की मनः स्थिति भी लिखी थी। असमय वियोग से उन्हें वहुत दुःख हुआ था पर वे सव सह गये। दूसरी विपत्ति का पहाड़ टूटा १४ मई १९२८ को, जव इनका इकलौता पुत्र वेदव्रत भी १५ वर्ष की अवस्था में न्यूमोनिया से अचानक चल बसा। तब हालत यह थी—

जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सु वीति वहार।
अव अलि रही गुलाव की, अपत कँटीली डार॥

आपके वाल-मित्र श्री भूमानन्द न आपके आग्रह पर ही, १९१४ में, व्राह्मण होत हुए भी एक अरोड़ा युवती पार्वती देवी से विवाह किया था। उस समय जात-पांत तोड़ना सचमुच बड़े साहस का काम था। उन्हीं भूमानन्द जी ने इनको दुबारा विवाह कर लेने का सुझाव दिया और वे कराची में एक वाल-विधवा महाराष्ट्र देवी के माता-पिता से वात-चीत भी कर रहे थे। उन्होंने कहा "इसमें जात-पांत भी टूटती है, विधवा विवाह भी होता है, और प्रान्त भेद भी दूर होता है। सामाजिक सुधार में क्रियात्मक सहयोग देने का बहुत अच्छा अवसर है।" भाग्य की गति कि उन्हें न चाहते हुए भी पुनः विवाह–पाश मे आवद्ध होना पड़ा। उसी महिला-सुन्दरबाई प्रधान से १४ दिसम्बर १९२९ को इनका विवाह हो गया। उस समय सन्तराम जी ४२ वर्ष के और इनकी पत्नी २८ वर्ष की थी।

आज भी इनका यह पारिवारिक जीवन सुख से चल रहा है। निःसन्तान होते हुए भी श्रीमती सुन्दरबाई संतुष्ट हैं और सच्ची जीवनसंगिनी हैं। उनकी पति-भक्ति किसी भी स्त्री के लिए ईर्ष्या का विषय हो सकती है। अपने नाते-रिश्तेदारों से हजारों मील दूर आकर पंजाब को ही उन्होंने अपना घर माना है। श्री सन्तराम जी इस विवाह के पश्चात् लाहौर के कृष्णनगर मुहल्ले में १४ मरले भूमि पर अपना भव्य मकान बनवा कर जून १९३१ से उसमें रहने लगे थे, किन्तु देश के विभाजन के कारण १४ अगस्त १९४७ को वह खाली करना पड़ा। किसी प्रकार प्राण बचा कर वह अपने गांव पहुंचे। यहां पहले तो सम्मिलित कुटुम्ब ही था, पर ११ फरवरी १९३१ को सम्पत्ति का विभाजन कर लिया गया था और इनके हिस्से भी गांव में दो वाटिकाओं का चतुर्थांश तथा कुछ खेत आए थे। तब से जन्म-ग्राम में ही इनका निवास है। आप के ही प्रयत्नों से १९६१ में गांव में डाकघर भी खुल गया है।

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने अपनी आत्मकथा (मेरी जीवन यात्रा) में श्री सन्तराम जी की पहली पत्नी श्रीमती गंगादेवी के मृदु स्वभाव और आतिथ्य-भावना का सुन्दर ढंग से उल्लेख किया है। उस समय वे राहुल नहीं बने थे और 'साधु रामोदार' ही थे। अपनी उस पत्नी की याद में श्री सन्तराम जी ने भी १९२५ में "आदर्श पत्नी" नामक पुस्तक लिख कर उनको समर्पित की थी। उस पुस्तक के आज अठारह संस्करण हो चुके हैं। श्रीमती सुन्दरबाई मराठी और गुजराती भाषाओं की ज्ञाता हैं और वे इन भाषाओं के ग्रंथों के अनुवाद में अपने पतिदेव की सहायक रही हैं। श्री सन्तराम जी मार्च १९५२ से ही पंजाब की सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिका "विश्व ज्योति" के अवैतनिक सह-सम्पादक भी हैं।

विचार धारा

श्री सन्त राम जी एक युगस्रष्टा हैं, क्यों कि उनके विचार आज से ३०–४० वर्ष आगे के हैं। ये भावी भारत के निर्माण के स्वप्न देखा करते हैं। अपने जीवनानुभव और अध्ययन के आधार पर आपने कई निष्कर्ष निकाले हैं जिनमें से कुछ आपके ही शब्दों में इस प्रकार हैं :—

"मैं पुनर्जन्म को मानता हूँ और गत चालीस वर्ष से पुनर्जन्म की घटनाओं का अध्ययन और संग्रह करता रहा हूँ। इस विषय पर मैंने अपने सारे अनुसंधान का निचोड़ तुमसर (नागपुर) के श्री गोपी कृष्ण राजाराम अभिनन्दन ग्रंथ (संवत् २०१६ वि०) में लिखा है। परन्तु मैं यह नहीं मानता कि अपने सुकर्मों के अनुसार भगवान् किसी को पुरस्कार स्वरूप ब्राह्मण और किसी को कुकर्म के दण्डस्वरूप भंगी जाति में जन्म देता है। मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार अनुकल और प्रतिकूल परिस्थिति में जन्म लेता है। किसी की प्रतिकल परिस्थिति को बदल कर अच्छी परिस्थिति आने में सहायता देना भी सभी सत्पुरुषों का धर्म है और उसको प्रतिकूल परिस्थिति में गिरा रहने पर विवश करना भारी पाप है।"

"मैं ऐसा समाज देखना चाहता हूँ जिसमें न कोई इतना निर्धन हो कि उसे किसी से मांगने की आवश्यकता हो और न ही कोई इतना धनाढ्य हो कि लोगों को धन लुटा सके।"

"मैं न किसी को अपने से नीचा मानता हूँ और न किसी को अपने से ऊंचा।"

"धर्म मनुष्य के लिए है, मनुष्य धर्म के लिए नहीं, ठीक उसी प्रकार जैसे कपड़ा शरीर के लिए होता है, शरीर कपड़े के लिए नहीं। कपड़ा शरीर पर फिट न आए तो कपड़े में काट-छांट की जाती है, उसे फिट करने के लिए शरीर को नहीं छीला जाता। इसलिए प्रत्येक युग और देश का धर्म अलग-अलग हो सकता है।"

श्री सन्तराम जी अक्सर कहा करते हैं कि इन्हें सब से अधिक प्रसन्नता उस समय होती है जब ये किसी दूसरे की निःस्वार्थ भाव से कोई सेवा कर पाते हैं, या जब इन्हें कोई अपने विचारों का मनुष्य मिल जाता है। आपका मत यही है कि "जब हम निःस्वार्थ भाव से किसी की कोई सेवा करते हैं तो वह चाहे हमारा कोई प्रत्युपकार न भी कर सके तो भी उस सेवा का फल हमें किसी दूसरे स्थान से तत्काल या देर से अवश्य मिल जाता है।"

आप हिन्दी में नवीन से नवीन विषय की पुस्तक अनूदित किया चाहते हैं या लिखना चाहते हैं। डेल कार्नेगी की पुस्तक "How to win Friends & influence people" का उनका अनुवाद "लोक-व्यवहार" अत्यन्त लोकप्रिय हुआ है तथा उसके चार संस्करण छप चुके हैं। सन् १९४१ की बात है आपने एक छोटी-सी अंग्रेज़ी-पुस्तक देखी। उसमें यूरोप के प्रसिद्ध प्रसिद्ध व्यक्तियों के प्रेम-पत्र छपे थे। बस, आपके मन में भी उत्कण्ठा जगी कि क्यों न हिन्दी में भी ऐसी पुस्तक रहे, जिस में भारत के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध व्यक्तियों के प्रेम-पत्रों का संग्रह रहे। आपने इस सम्बन्ध में कुछ लोगों को पत्र भी लिखे। प्रिवी कौंसिल के न्यायाधीश स्वर्गीय श्री एम० आर० जयकर ने इनके पत्र के उत्तर में लिखा था :—

बम्बई

जुलाई १०, १९४१

"मुझे आपका ५ जुलाई का परिपत्र मिला। उसमें आपने मुझसे ऐसे प्रेम-पत्र मांगे हैं जो मैंने अपने जीवन में किसी को या किसी दूसरे ने मुझको लिखे हों। खेद है कि मैंने अपने जीवन में न तो कभी कोई प्रेम-पत्र अपनी पत्नी को और न ही किन्हीं दूसरों की पत्नियों को लिखा है। मैं उस युग का था जब एक दूसरे को प्रेम पत्र लिखे बिना ही विवाह हो जाया करते थे। इसलिये मुझे खेद है कि मैं आपकी प्रार्थना पूरी नहीं कर सकता।

आपका—

एम० आर० जयकर"

ग्रापकी सूझ-बूझ सदैव निराली रही है ग्रौर ग्राज भी ग्राप को ग्रध्ययन का वहुत शौक है। ढेर सी पत्र-पत्रिकाएं ग्रापको प्राप्त होती हैं। ग्राप उन्हें पढ़ते ही नहीं, एक चतुर लेखक ग्रौर कुशल पत्रकार की भांति ग्रपनी रुचि के विषयों से संवंधित समाचारों की कतरनें भी ग्राप संभाल कर रखते हैं।

ग्रपनी लेखन-कला के बारे में भी ग्रापकी उतनी ही स्पष्ट विचारधारा है जैसी कि जात-पांत के सम्बन्ध में। ग्रापने कहा है:

"मैंने जो कुछ लिखा है या ग्रब लिखता हूँ उसमें मेरी भावना यह कभी नहीं रही कि इससे मुझे उच्चकोटि का मौलिक साहित्यकार होने की ख्याति मिले। मैं एक तो जनता के हितार्थ ग्रपने विचारों के प्रचार के लिए लिखता हूँ, दूसरे इस भाव से लिखता हूँ कि जिन भाषाग्रों को मैंने परिश्रम से सीखा है उनमें जो कुछ उपादेय हैं वह सब मैं हिन्दी में ग्रपने देशबन्धुग्रों के लिये उपलब्ध कर दूं। उससे लाभ उठाने क लिये मेरे राष्ट्र-वन्धुग्रों को वे भाषाएँ पढ़ने का प्रयोजन न रहे। जैसे हमारे भारत के उपनिषद्, गीता, दर्शन ग्रौर वेद ग्रादि ग्रंथ पढ़ने के लिये एक ग्रंग्रेज़ को संस्कृत पढ़ने की ग्रावश्यकता नहीं रही वैसे ही भारतीयों को भी योरूपीय भाषाग्रों के ग्रच्छे ग्रंथ हिन्दी में उपलब्ध हो सकें, इसी से मैंने ग्रपना ग्रधिकांश समय ग्रनुवाद कार्य में लगाया है।"

आत्मकथा के कुछ पृष्ठ: सन्तराम

मेरे कुछ संस्मरण

श्री सन्तराम

सन् १९३३ या १९३४ की बात है, महात्मा गांधी लाहौर आए और लाजपतराय भवन में ठहरे। हमारे जातपांत तोड़क मंडल का एक डेपुटेशन उनसे मिलने गया। उन्होंने केवल पंद्रह मिनट दिये। जिस समय हम कमरे में पहुंचे, उस समय कस्तूरबा और जमुनालाल बजाज उनके पास ही बैठे थे। उन दिनों महात्मा गांधी जातपांत में विश्वास रखते थे। उन्होंने अपनी गुजराती पुस्तक 'धर्ममंथन' में भी इसका समर्थन किया था। मेरे प्रश्न करने पर वह बोले कि जातपांत से एक बड़ा लाभ यह है कि व्यापार में होड़ बहुत कम हो जाती है। जो व्यापार पिता करता है, पुत्र चुपचाप वही काम करने लगता है।

इस पर मैंने आपत्ति करते हुए कहा, "यह ठीक है कि इस व्यवस्था में ब्राह्मण के लड़के को पठनपाठन या मंदिर में पूजापाठ का काम मिल जाएगा, क्षत्रिय का लड़का सेना में सिपाही या मेजर बन जाएगा, बनिए का लड़का भी दुकान या व्यापार करके धन कमा लेगा। परंतु जिस भंगी के दादा परदादा आठ आना मासिक मजदूरी पर टट्टी उठाते रहे हैं और जो स्वयं टट्टी उठा रहा है, उसके पोते-परपोते भी वही काम करें, यह कहां का न्याय है ?" मैंने जरा आवेश में कहा, "आप जाति के बनिए हैं, जाइए, कहीं दकान खोल लीजिए।"

महात्मा जी की वाणी में बहुत अधिक संयम था। बड़ी से बड़ी आवेश दिलाने की बात होने पर भी वह आपे से बाहर नहीं होते थे। मेरी बात सुन कर वह खिलखिला कर हँस पड़े और बोले, "मैं आपका ही काम कर रहा हूँ। परन्तु प्रत्यक्ष रूप से मैं यह काम नहीं कर सकता।"

भारतीय मुसलमान अलग क्यों ?

सन् १९४२ की बात है। मैंने मुहम्मदअली जिन्ना से कहा, "इंग्लैंड में भी धर्म की दृष्टि से लार्ड हडले जैसे कई लोग मुसलमान हैं। परन्तु वे कभी नहीं कहते कि हमारे आर्थिक और राजनीतिक हित, हमारा इतिहास और हमारी भाषा और हमारे महापुरुष सब कुछ अंग्रेजों से भिन्न हैं। क्या कारण है कि भारत में ज्यों ही कोई व्यक्ति मुसलमान हो जाता है, वह कहने लगता है कि मेरे आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक हित हिंदुओं के हितों से भिन्न हैं, मेरी भाषा और मेरा इतिहास वह नहीं, जो हिंदुओं का है, मेरे महापुरुष महमूद और अबुलकासिम हैं, राम और कृष्ण नहीं।"

मेरे प्रश्न का उत्तर उन्होंने इस प्रकार दिया :

"आपका कहना ठीक है कि इंग्लैंड में जब कोई मनुष्य मुसलमान हो जाता है, तो वह यह नहीं कहने लगता कि नेलसन और क्रामवेल मेरे महापुरुष नहीं थे या अंग्रज़ी मेरी राष्ट्रभाषा नहीं है, या मेरे राजनीतिक और आर्थिक हित ईसाई अंग्रेज़ों से भिन्न हैं। इसका कारण यह है कि इंग्लैंड में जब कोई व्यक्ति मुसलमान हो जाता है, तो उसका सामाजिक बहिष्कार नहीं कर दिया जाता, उसे लोग म्लेच्छ नहीं कहने लगते। परन्तु जब से भारत में मुसलमान हुए हैं हिंदू समाज ने हमारा पूरा-पूरा सामाजिक बहिष्कार कर रखा है। हमारे साथ रोटीबेटी का व्यवहार होना तो दूर, हमारा छुआ हुआ भोजन भी हिंदुओं के लिए अपवित्र हो जाता है। इसलिये हिंदुओं की जो हारें हैं, वे हमारी जीतें हैं, उनकी जो जीतें हैं, वे हमारी हारें हैं।"

एक मीठी याद

सन १६३५ की बात है, मैं देहरादून गया, परीक्षा करने के लिए मैं एक मुसलमान हलवाई की दुकान पर गया। मेरे साथ मेरे मित्र श्री भूमानंद भी थे। मैं ने एक आना दे कर हलवाई से मिठाई देने को कहा। पहले तो हलाई आश्चर्य से बहुत देर तक मुझे सिर से पांव तक देखता रहा, और फिर बोला, "मैं मुसलमान हूं।"

मैं ने कहा, "मैं ने आप से मजहब नहीं पूछा। आप मुसलमान हैं, तो क्या हुआ? आप सांप तो नहीं हैं? कृपा कर के मुझे मिठाई दीजिए"।

मेरे ये शब्द सुन कर प्रसन्नता से हलवाई का मुख चमक उठा। वह बोला, "यह बात है!"

मैं ने कहा, "हां, यही बात है।"

उस का लड़का उठ कर हमारे लिए मिठाई निकालने जा रहा था कि उस ने उसे वापस बुला लिया। वह खुद उठा और पल्ला भर कर मिठाई ले आया।

मैं ने कहा, "इतनी नहीं हमें एक आने की ही चाहिए।"

वह बोला, "अजी रुपए पैसे की बात छोड़िए। आप मिठाई खाइए।"

इस के बाद उस ने पूछा कि केवल आप ही ऐसे खयाल रखते हैं या आप जैसे और हिंदू भी हैं?

मैं ने कहा "हमारे जातपांत तोड़कमंडल के सभी सदस्य इसी विचार के हैं।"

आत्मकथा के कुछ पृष्ठ: सन्तराम

मेरे कुछ संस्मरण

श्री सन्तराम

सन् १६३३ या १६३४ की बात है, महात्मा गांधी लाहौर आए और लाजपतराय भवन में ठहरे। हमारे जातपांत तोड़क मंडल का एक डेपुटेशन उनसे मिलने गया। उन्होंने केवल पंद्रह मिनट दिये। जिस समय हम कमरे में पहुंचे, उस समय कस्तूरबा और जमुनालाल बजाज उनके पास ही बैठे थे। उन दिनों महात्मा गांधी जातपांत में विश्वास रखते थे। उन्होंने अपनी गुजराती पुस्तक 'धर्ममंथन' में भी इसका समर्थन किया था। मेरे प्रश्न करने पर वह बोले कि जातपांत से एक बड़ा लाभ यह है कि व्यापार में होड़ बहुत कम हो जाती है। जो व्यापार पिता करता है, पुत्र चुपचाप वही काम करने लगता है।

इस पर मैंने आपत्ति करते हुए कहा, "यह ठीक है कि इस व्यवस्था में ब्राह्मण के लड़के को पठनपाठन या मंदिर में पूजापाठ का काम मिल जाएगा, क्षत्रिय का लड़का सेना में सिपाही या मेजर बन जाएगा, बनिए का लड़का भी दुकान या व्यापार करके धन कमा लेगा। परंतु जिस भंगी के दादा परदादा आठ आना मासिक मजदूरी पर टट्टी उठाते रहे हैं और जो स्वयं टट्टी उठा रहा है, उसके पोते-परपोते भी वही काम करें, यह कहां का न्याय है?" मैंने जरा आवेश में कहा, "आप जाति के बनिए हैं, जाइए, कहीं दुकान खोल लीजिए।"

महात्मा जी की वाणी में बहुत अधिक संयम था। बड़ी से बड़ी आवेश दिलाने की बात होने पर भी वह आपे से बाहर नहीं होते थे। मेरी बात सुन कर वह खिलखिला कर हँस पड़े और बोले, "मैं आपका ही काम कर रहा हूँ। परन्तु प्रत्यक्ष रूप से मैं यह काम नहीं कर सकता।"

भारतीय मुसलमान अलग क्यों ?

सन् १६४२ की बात है। मैंने मुहम्मदअली जिन्ना से कहा, "इंग्लैंड में भी धर्म की दृष्टि से लार्ड हडले जैसे कई लोग मुसलमान हैं। परन्तु वे कभी नहीं कहते कि हमारे आर्थिक और राजनीतिक हित, हमारा इतिहास और हमारी भाषा और हमारे महापुरुष सब कुछ अंग्रेज़ों से भिन्न हैं। क्या कारण है कि भारत में ज्यों ही कोई व्यक्ति मुसलमान हो जाता है, वह कहने लगता है कि मेरे आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक हित हिंदुओं के हितों से भिन्न हैं, मेरी भाषा और मेरा इतिहास वह नहीं, जो हिंदुओं का है, मेरे महापुरुष महमूद और अबुलकासिम हैं, राम और कृष्ण नहीं।"

मेरे प्रश्न का उत्तर उन्होंने इस प्रकार दिया :

"आपका कहना ठीक है कि इंग्लैंड में जब कोई मनुष्य मुसलमान हो जाता है, तो यह यह नहीं कहने लगता कि नेलसन और क्रामवेल मेरे महापुरुष नहीं थे या अंग्रजी मेरी राष्ट्रभाषा नहीं है, या मेरे राजनीतिक और आर्थिक हित ईसाई अंग्रेज़ों से भिन्न हैं। इसका कारण यह है कि इंग्लैंड में जब कोई व्यक्ति मुसलमान हो जाता है, तो उसका सामाजिक बहिष्कार नहीं कर दिया जाता, उसे लोग म्लेच्छ नहीं कहने लगते। परन्तु जब से भारत में मुसलमान हुए हैं हिंदू समाज ने हमारा पूरा-पूरा सामाजिक बहिष्कार कर रखा है। हमारे साथ रोटीबेटी का व्यवहार होना तो दूर, हमारा छुआ हुआ भोजन भी हिंदुओं के लिए अपवित्र हो जाता है। इसलिये हिंदुओं की जो हारें हैं, वे हमारी जीतें हैं, उनकी जो जीतें हैं, वे हमारी हारें हैं।"

एक मीठी याद

सन १६३५ की बात है, मैं देहरादून गया, परीक्षा करने के लिए मैं एक मुसलमान हलवाई की दुकान पर गया। मेरे साथ मेरे मित्र श्री भूमानंद भी थे। मैं ने एक आना दे कर हलवाई से मिठाई देने को कहा। पहले तो हलाई आश्चर्य से बहुत देर तक मुझे सिर से पांव तक देखता रहा, और फिर बोला, "मैं मुसलमान हूं।"

मैं ने कहा, "मैं ने आप से मजहब नहीं पूछा। आप मुसलमान हैं, तो क्या हुआ? आप सांप तो नहीं हैं? कृपा कर के मुझे मिठाई दीजिए"।

मेरे ये शब्द सुन कर प्रसन्नता से हलवाई का मुख चमक उठा। वह बोला, "यह बात है!"

मैं ने कहा, "हां, यही बात है।"

उस का लड़का उठ कर हमारे लिए मिठाई निकालने जा रहा था कि उस ने उसे वापस बुला लिया। वह खुद उठा और पल्ला भर कर मिठाई ले आया।

मैं ने कहा, "इतनी नहीं हमें एक आने की ही चाहिए।"

वह बोला, "अजी रुपए पैसे की बात छोड़िए। आप मिठाई खाइए।"

इस के बाद उस ने पूछा कि केवल आप ही ऐसे खयाल रखते हैं या आप जैसे और हिंदू भी हैं?

मैं ने कहा "हमारे जातपांत तोड़कमंडल के सभी सदस्य इसी विचार के हैं।"

इस पर वह बोला, "अगर सब लोगों क खयालात आप जैसे हो जाएं, तो हिंदूमुसलमान का यह सारा झगड़ा ही खतम न हो जाए।" इस बात को आज तीस वर्ष से ऊपर हो गए।

वह विदेशी मिशनरी

बात सन १६०८ या १६०६ की है। मैं एक अमरीकन नवयुवक को नंगे सिर और नंगे पैर, शरीर पर लंबा लबादा पहने लाहौर की ठंडी सड़क पर आते-जाते देखा करता था। पूछने पर पता लगा कि वह एक ईसाई मिशनरी है और भारत में ईसाइयों के लिए गुरुकुल कांगड़ी के नमूने पर एक संस्था बनाने का विचार कर रहा है। इस के कुछ वर्ष बाद जब मुझे सन १६१३ में रामपुर बुशहर राज्य में जाने का अवसर मिला, तो मार्ग में शिमले से कुछ दूर आगे कोटगढ़ नामक स्थान पर मुझे पता लगा कि यहां एक अमरीकन मिशनरी रहते हैं, उन्होंने कई पहाड़ी हिंदुओं को ईसाई बनाया है। मुझे यह भी बताया गया कि एक समय जब वे एक लड़के को ईसाई बनाने जा रहे थे, तो कुछ लोगों ने रास्ते में उन पर आक्रमण कर उनका सिर तोड़ डाला था। बहुत सा रक्त बह जाने से वह अचेत हो कर सड़क पर गिर पड़े थे। बाद में जब अपराधी पकड़े गए और उन को पुलिस के हवाले किया जाने लगा, तो इस मिशनरी ने उन पर अभियोग चलाने से इनकार कर दिया।

कोटगढ़ का पहाड़ी प्रदेश अशिक्षा के कारण बहुत ही पिछड़ा हुआ प्रदेश है। वहा के लोग बड़े ही कट्टरपंथी और अंधविश्वासी हैं।

मैं उन से मिलने गया। उन्होंने सेब का उद्यान लगा रखा था और एक देशी ईसाई लड़की से विवाह कर के उस में रहते थे। मुझे वह बड़े प्रेम से मिले। मैं अंगरेजी में बात करने लगा, तो वह हिंदी बोलने लगे। मैंने देखा कि वह वही नवयुवक हैं जिन्हें मैं गरमी के दिनों में भी लाहौर में नंगे पांव घूमते देखा करता था।

मैंने कहा, "सुना है कि अंगरेज आप से मिलना पसंद नहीं करते।" इस पर वह बोले, "मैं यहां भारतीयों से मिलने आया हूं, सो वे मुझ से प्रेम करते हैं। मुझे यदि अंगरेजों से मिलना होता तो मैं भारत न आ कर इंगलैंड में ही रहता।"

हिंदू हो जाने पर उन का नाम सत्यानंद स्टोक्स हो गया। वह गृहस्थ थे। उन के लड़के और लड़कियां दोनों थे। बच्चों के विवाह का प्रश्न उन के सामने आना स्वाभाविक था। अकस्मात उन की एक चिट्ठी हमारे जातपांत तोड़क मंडल के तत्कालीन प्रधान भाई परमानंद जी को मिली। उस चिट्ठी का हिंदी अनुवाद इस प्रकार है :

कोटगढ़, २८ जनवरी, १९२४

प्रिय भाई परमानंद जी,

कुछ मास हुए मैंने जातपांत तोड़क मंडल की स्थापना का समाचार पढ़ा था। इस मंडल का भारत की समस्याओं पर एक बड़ा भारी प्रभाव पड़ेगा, इसलिए मुझे इस में बड़ी दिलचस्पी है। समाज सुधार में मुझे यह बड़ा आवश्यक और साहसपूर्ण पग जान पड़ता है। मैं जानना चाहता हूं कि अब तक मंडल क्या कुछ कर पाया है, और आर्यसमाज के सदस्य इस मंडल को किस दृष्टि से देखते हैं। अब तक यद्यपि आर्यसमाज के सिद्धांत ऐसे सुधार के काम के अनुकूल हैं, परंतु मैं देखता हूं कि क्रियात्मक रूप से विवाह का चुनाव पुराने सनातनी नियमों के अनुसार ही किया जाता है।

हम सब जानते हैं कि सिद्धांतों को मानने वाले तो बहुतेरे मिल जाते हैं, परंतु उन पर आचरण करना एक बिलकुल अलग बात है। क्या मंडल के सदस्य नियमों पर आचरण करने लगे हैं? इस में कितने व्यक्ति सम्मिलित हुए हैं और वे अधिकांशतः किन किन श्रेणियों से आए हैं? क्या बिलकुल भिन्न-भिन्न जातियों के बीच भी कोई विवाह हुआ है और क्या कोई ऊंची जाति और नीची जाति के बीच भी हुआ है? आप को इस संस्था का भविष्य कैसा दीख पड़ता है? क्या इस के सदस्यों का उत्साह पूर्ववत कायम है, और क्या मंडल की सदस्य संख्या बढ़ रही है? यदि आप इन बातों का उत्तर देने की कृपा करेंगे, तो मैं आप का बड़ा आभार मानूंगा, क्योंकि मंडल जैसी संस्था के साथ मुझे बहुत सहानुभूति है। ये बातें केवल मैं अपनी ही जानकारी के लिए पूछ रहा हूं।

—आप का

एस. ई. स्टोक्स.

प्रसन्नता की बात है कि उन के लड़कों का विवाह वहीं अच्छे हिंदू घरानों में हो गया। राय साहब देवीदास एक रियासत में मंत्री थे। उन्होंने अपनी लड़की सत्यानंदजी के बड़े लड़के को दे दी। परंतु लड़कियों के लिए योग्य वर वहां न मिल सके। इस के लिए उन्हें लाहौर आना पड़ा। लड़कियों के वर की खोज के लिए के जब वे लाहौर आए, तो मैं ने उन्हें भोजन के लिए बुलाया। उस समय वे चुस्त पाजामा, सिर पर कुल्ली और बंद गले का कोट पहनते थे। सिगरेट या सिगार के स्थान पर बड़े तकिए के सहारे फरश पर बैठ कर देशी हुक्का गुड़गुड़ कर के पीते थे।

गांधी जी का विचार बदला

अगस्त १९४५ में महात्मा गांधी के सेवाग्राम आश्रम में हरिजन सेवकों का एक सम्मेलन बुलाया गया था। लाहौर के लोकसेवक संघ के मोहनलालजी भी उस

Acc. No. 2869

सम्मेलन में गए थ। वह मरे परम मित्र और हमारे जातपांत तोड़क मंडल के सदस्य थे। मैंने उन से कहा कि आप सेवाग्राम जा कर गांधीजी से पूछिए कि जब आप मानते हैं कि छूतछात का मूल कारण जातपांत है, तो आप जातपांत को ही मिटाने का काम हाथ में क्यों नहीं लेते? श्री मोहनलाल ने सेवाग्राम जा कर यह प्रश्न महात्माजी से पूछा तथा मेरे पास उन का उत्तर लिख भेजा, जो इस प्रकार है:

"किसी विषय में अपना कोई मत रखना एक बात है और उसी मत को सारे समाज से पूरी तरह मनवाना दूसरी बात। हो सकता है कि सब लोग मेरे साथ पग मिला कर न चल सकें, इसलिए मुझे बहुत अधिक धैर्य से काम लेना और जल्दी करने के साथ धीरे-धीरे चलने पर भी संतुष्ट रहना पड़ता है। मैं सिद्धांत रूप से आप के साथ पूर्णतः सहमत हूं। यदि मैं सवा सौ वर्ष तक जीता रहूं, तो मुझे आशा है कि समूचे हिंदू समाज को अवश्य अपने मत का बना सकूंगा।"

['आजकल' से साभार]

निष्ठावान पंडित सन्तराम

श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

मेरा जन्म पंजाब में होने पर भी वास्तव में पंजाब में रहने का अवसर मुझे सन् १६३१ से मिला, जब मैंने लाहौर से विश्व साहित्य ग्रन्थमाला का प्रकाशन प्रारम्भ किया था। लाहौर सब से पहले और सब से अधिक मुझे जिस बात ने प्रभावित किया, वह उस युग की एक ऐसी पीढ़ी थी, जो युवावस्था समाप्त कर प्रौढ़ावस्था में प्रवेश कर चुकी थी, पर पंजाब के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन पर जैसे उस पीढ़ी का पूर्ण आधिपत्य था। एक असाधारण ढंग का संयम, दृढ़ निश्चय और आत्म विश्वास इस पीढ़ी में था। शरीर से स्वस्थ, हृदय से उदार और व्यवहार में अत्यन्त क्रियाशील ये पंजाबी जैसे किसी न किसी आदर्श से प्रेरणा ले रहे थे। यह देख कर मुझे विशेष सन्तोष होता था कि आदर्शों और विचारों में अत्यन्त भेद और कभी कभी तो विरोध के रहते भी इस पीढ़ी के लोग एक दूसरे के प्रति असहिष्णु नहीं थे। यहां तक कि हिन्दू, सिक्ख, मुसलमान सभी जमातों के लोगों में जैसे एक दूसरे को समझते और एक दूसरे का आदर करने की असाधारण शक्ति थी। जिन परिस्थितियों ने १० ही वर्षों में उस पीढ़ी को नष्ट-भ्रष्ट या कमजोर बना दिया, उनका निर्देश करना मेरे इस लेख का उद्देश्य नहीं है। मैं तो उस युग के पंजाब की बात कर रहा हूं जब मैंने पाया था कि महात्मा हंसराज, सिकन्दर हयात खान, छोटूराम, राजा नरेन्द्रनाथ, अब्दुल कादिर, सुन्दर सिंह मजीठिया, बक्शी टेकचन्द दीवान बद्रीदास, गोसांई गणेशदत्त, जैसे दृढ़ इच्छा शक्ति और उदार हृदय वाले व्यक्ति अपने-अपने ढंग से पंजाब को प्रगतिशील, समृद्ध और सुशिक्षित बनाने का प्रयत्न कर रहे थे।

ऊपर मैंने जो नाम गिनाए हैं, उन में से एक भी अखिल भारतीय स्तर का नेता नहीं था। पर अपने-अपने क्षेत्र में ये लोग राष्ट्रीय निर्माण का अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य कर रहे थे। इन लोगों की सब से बड़ी शक्ति यह थी कि ये अकेले नहीं थे। उन्हीं के समान उन्ही की पीढ़ी के अन्य बीसियों ऐसे पंजाबी पूरी लगन के साथ जी-जान से उन का साथ दे रहे थे, जिन में असाधारण कार्य शक्ति थी।

इन्हीं लोगों में पण्डित सन्तराम जी भी थे। परिचय से पूर्व तक मैं उन्हें पंजाब के प्रथम लोकप्रिय हिन्दी लेखक रूप में जानता था। पर यह देख कर उन के प्रति मेरे हृदय में श्रद्धा उत्पन्न हुई कि यह व्यक्ति किस अटूट विश्वास के साथ एक ऐसा कार्य भी कर रहा है, जिस कार्य का मजाक उड़ाने वालों की संख्या उसके हिमाय-

तियों से बहुत अधिक है। जितना–जितना मैं पंडित सन्तराम के सम्पर्क में आत गया, उन के प्रति मेरी आस्था और श्रद्धा-भावना बढ़ती चली गई।

आप आज से ३० वर्ष पूर्व के पंजाब की कल्पना कीजिए, जब वहां हिन्द पढ़ने वालों की संख्या आटे में नमक से अधिक नहीं थी। उन दिनों उर्दू पंजाब व प्रमुख भाषा थी और पं० सन्तराम उर्दू खूब अच्छी जानते थे। फिर भी जहां त सृजनात्मक साहित्य का सम्बन्ध है वह केवल हिन्दी ही में लिखते थे। किसी तरह व नौकरी–चाकरी उन्होंने स्वीकार नहीं की थी। उस युग में स्वतन्त्र लेखक के रूप अपनी आजीविका अर्जित कर सकना एक अत्यन्त दुस्साध्य कार्य था। पर पं० सन्तरा न केवल यह दुस्साध्य कार्य कर रहे थे, अपितु निर्धनता और अभाव का जीव बिताते हुए भी किसी तरह की कटुता उन्होंने अपने स्वभाव में नहीं आने दी थी जो कोई उन से मिलता था, पूरी हार्दिकता से वह उसका स्वागत–सत्कार करते थे अपने मेहमानों को अच्छा खिलाने–पिलाने का जैसे उन्हें शौक था। बाहर से आ वाले लोग इस बात की कभी कल्पना भी न कर सकते थे कि उन का मेज़बान कित तपस्या और कितनी साधना का जीवन बिता रहा है।

उन दिनों पंडित सन्तराम के जीवन का प्रमुख उद्देश्य यह था कि भारत में जातपांत के भेदों की समाप्ति करें। भारत की आन्तरिक कमज़ोरी का निदान, उन राय से, यही था कि जातपांत के भेदभाव को हमारे देश स छिन्न भिन्न व दिया जाए भारतीय जनता की आस्था अपने देश के प्रति नहीं, बल्कि अप जात पांत के प्रति है और इस तरह यह विशाल देश परस्पर–द्वेषी सैंकड़ों ऐसे उ देशों में बंट गया है, जो एक दूसरे के पड़ोसी होते हुए भी वास्तव में उन्हें परा समझते हैं। पं० सन्तराम अपने समय का एक काफ़ी बड़ा अंश जात पांत तोड़क संगठन और संचालन को देते थे। जात पांत तोड़क मण्डल के दोनों पत्रों के सम्पादक भी वही थे। उस युग में उन के उस कार्य का मज़ाक उड़ाने वालों की संख्या सैंकड़े हजारों में थी, पर उन का साथ देने वाले लोग उंगलियों पर गिने जा सकते थे। इस भी पं० सन्तराम कभी निराश या निरुत्साह दिखाई नहीं दिए। उन्हें इस बात का पू विश्वास था कि आखिर में विजय उन्हीं की होगी और इस देश में से जात–प का प्रभुत्व नष्ट होकर रहेगा।

साहित्यकार के रूप में पं० सन्तराम की सब से बड़ी देन उनकी सरल, स्प और प्रवाहमयी गद्य लेखन की शैली है। पं० सन्तराम ने आजीवन सरस्वती आराधना की है। मुझे इस बात की हार्दिक प्रसन्नता है कि पंजाब अपने इस निष्ठावा सपूत का सम्मान कर रहा है। वह इस के पूर्ण अधिकारी हैं। मुझे यह भी आश है कि अभी काफ़ी समय तक वह सरस्वती की आराधना और देश की सेवा क रहेंगे। यह सम्मान उनके जीवन के लिए सम्बल बनेगा।

श्री सन्तराम बी. ए.

प्रो० रघुनन्दन जी शास्त्री

श्री सन्तराम बी०ए० पंजाब के एकनिष्ठ साहित्यकार हैं। साहित्य सेवा ही आप की वृत्ति, आजीविका और मनोरंजन आदि सब कुछ है। आप और कोई नौकरी या व्यवसाय नहीं करते। आपने स्वयं एक बार लिखा था—'उस समय से (सन् १९२४ जब आपकी धर्मपत्नी का देहान्त हुआ था) पुस्तकों की रायल्टी लेखों के पुरस्कार तथा पंजाब विश्वविद्यालय की परीक्षाओं की कापियां जांचने के परिश्रमिक से ही मेरी जीविका चल रही है'।

आपका न केवल जन्म ही पंजाब में हुआ है, अपितु आपकी समूची शिक्षा और कार्य का क्षेत्र भी पंजाब ही रहा है। यों तो पं० माधवप्रसाद मिश्र, पं० चन्द्रधर गुलेरी, डा०श्याम सुन्दरदास, श्री भगवान्दास, श्री वात्स्यायन, श्री अश्क, श्री यशपाल और जयचंद विद्यालंकार आदि बीसियों उद्भट और विख्यात लेखक पंजाब ने उत्पन्न किये हैं परन्तु इनका प्रधान कार्यक्षेत्र और कीर्तिस्थल प्रायः पंजाब से बाहर ही रहा है। निःसंदेह इन सब पर पंजाब को बड़ा गौरव है, पर पंजाब में ही रह कर हिन्दी की सेवा का जो श्रेय श्री सन्तराम जी के द्वारा हमारे प्रान्त को मिला है, वह विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

श्री सन्तराम जी के सम्बन्ध में एक विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि जिन दिनों आप स्कूल में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, उस समय पंजाब के स्कूलों मे हिन्दी को कोई स्थान प्राप्त न था। शिक्षा का प्रारम्भ और मिडल तक का माध्यम भी उर्दू ही था। उर्दू के कारण क्लासिकल भाषा भी फ़ारसी ही पढ़नी पड़ती थी। श्री सन्तराम जी ने भी बी० ए० तक यही भाषाएँ पढ़ीं। १९०९ की बी०ए० की परीक्षा में आप फारसी में सर्व प्रथम रहे थे। गवर्नमेंट कालेज लाहौर में तीसरे वर्ष की कक्षा में पढ़ते हुए आपने आर्यसमाज के संपर्क के कारण देवनागरी अक्षरों को सीखना शुरू किया। यह प्रसन्नता की बात है कि आपका हिन्दी प्रेम निरन्तर बढ़ता गया और सतत अध्यवसाय से आप शीघ्र ही हिन्दी के अच्छे लेखक माने जाने लगे।

श्री सन्तराम जी से पहले शायद ही पंजाब का कोई लेखक होगा जिस के लेखों को "सरस्वती" जैसी पत्रिका में स्थान मिल पाया हो और जिसे काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने पुरस्कृत किया हो। (आप को 'बालक' पर उक्त सभा की ओर से एक स्वर्णपदक मिला था) उस समय किसी पंजाबी लेखक को सरस्वती में स्थान मिलना और बनारस की उक्त संस्था द्वारा पुरस्कृत होना निःसंदेह पंजाब के लिये बड़े गौरव की बात समझी जाती थी। सरस्वती का सम्पादन, उन दिनों, पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी

तियों से वहुत अधिक है। जितना–जितना मैं पंडित सन्तराम के सम्पर्क में आत गया, उन के प्रति मेरी आस्था और श्रद्धा-भावना वढ़ती चली गई।

आप आज से ३० वर्ष पूर्व के पंजाव की कल्पना कीजिए, जव वहां हिन्द पढ़ने वालों की संख्या आटे में नमक से अधिक नहीं थी। उन दिनों उर्दू पंजाव व प्रमुख भाषा थी और पं० सन्तराम उर्दू खूव अच्छी जानते थे। फिर भी जहां त सृजनात्मक साहित्य का सम्वन्ध है वह केवल हिन्दी ही में लिखते थे। किसी तरह व नौकरी–चाकरी उन्होंने स्वीकार नहीं की थी। उस युग में स्वतन्त्र लेखक के रूप अपनी आजीविका अर्जित कर सकना एक अत्यन्त दुस्साध्य कार्य था। पर पं० सन्तरा न केवल यह दुस्साध्य कार्य कर रहे थे, अपितु निर्धनता और अभाव का जीव विताते हूए भी किसी तरह की कटुता उन्होंने अपने स्वभाव में नहीं आने दी थी जो कोई उन से मिलता था, पूरी हार्दिकता से वह उसका स्वागत–सत्कार करते थे अपने मेहमानों को अच्छा खिलाने–पिलाने का जैसे उन्हें शौक था। वाहर से आ वाले लोग इस वात की कभी कल्पना भी न कर सकते थे कि उन का मेज़वान कित तपस्या और कितनी साधना का जीवन विता रहा है।

उन दिनों पंडित सन्तराम के जीवन का प्रमुख उद्देश्य यह था कि भारत में जातपांत के भेदों की समाप्ति करें। भारत की आन्तरिक कमज़ोरी का निदान, उन राय से, यही था कि जातपांत के भेदभाव को हमारे देश स छिन्न भिन्न क दिया जाए भारतीय जनता की आस्था अपने देश के प्रति नहीं, वल्कि अप जात पांत के प्रति है और इस तरह यह विशाल देश परस्पर–द्वेषी सैंकड़ों ऐसे उ देशों में वंट गया है, जो एक दूसरे के पड़ोसी होते हुए भी वास्तव में उन्हें परा समझते हैं। पं० सन्तराम अपने समय का एक काफ़ी वड़ा अंश जात पांत तोड़क संगठन और संचालन को देते थे। जात पांत तोड़क मण्डल के दोनों पत्रों के सम्पादक भी वही थे। उस युग में उन के उस कार्य का मज़ाक उड़ाने वालों की संख्या सैंकड़ हज़ारों में थी, पर उन का साथ देने वाले लोग उंगलियों पर गिने जा सकते थे। इस भी पं० सन्तराम कभी निराश या निरुत्साह दिखाई नहीं दिए। उन्हें इस बात का पू विश्वास था कि आखिर में विजय उन्हीं की होगी और इस देश में से जात–प का प्रभुत्व नष्ट होकर रहेगा।

साहित्यकार के रूप में पं० सन्तराम की सब से वड़ी देन उनकी सरल, स्प और प्रवाहमयी गद्य लेखन की शैली है। पं० सन्तराम ने आजीवन सरस्वती अाराधना की है। मुझे इस बात की हार्दिक प्रसन्नता है कि पंजाब अपने इस निष्ठावा सपूत का सम्मान कर रहा है। वह इस के पूर्ण अधिकारी हैं। मुझे यह भी आश है कि अभी काफ़ी समय तक वह सरस्वती की आराधना और देश की सेवा क रहेंगे। यह सम्मान उनके जीवन के लिए सम्बल बनेगा।

श्री सन्तराम बी. ए.

प्रो० रघुनन्दन जी शास्त्री

श्री सन्तराम बी०ए० पंजाब के एकनिष्ठ साहित्यकार हैं। साहित्य सेवा ही आप की वृत्ति, आजीविका और मनोरंजन आदि सब कुछ है। आप और कोई नौकरी या व्यवसाय नहीं करते। आपने स्वयं एक बार लिखा था—'उस समय से (सन् १६२४ जब आपकी धर्म-पत्नी का देहान्त हुआ था) पुस्तकों की रायल्टी लेखों के पुरस्कार तथा पंजाब विश्वविद्यालय की परीक्षाओं की कापियां जांचने के परिश्रमिक से ही मेरी जीविका चल रही है'।

आपका न केवल जन्म ही पंजाब में हुआ है, अपितु आपकी समूची शिक्षा और कार्य का क्षेत्र भी पंजाब ही रहा है। यों तो पं० माधवप्रसाद मिश्र, पं० चन्द्रधर गुलेरी, डा०श्याम सुन्दरदास, श्री भगवान्दास, श्री वात्स्यायन, श्री अश्क, श्री यशपाल और जयचंद विद्यालंकार आदि बीसियों उद्भट और विख्यात लेखक पंजाब ने उत्पन्न किये हैं परन्तु इनका प्रधान कार्यक्षेत्र और कीर्तिस्थल प्रायः पंजाब से बाहर ही रहा है। निःसंदेह इन सब पर पंजाब को बड़ा गौरव है, पर पंजाब में ही रह कर हिन्दी की सेवा का जो श्रेय श्री सन्तराम जी के द्वारा हमारे प्रान्त को मिला है, वह विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

श्री सन्तराम जी के सम्बन्ध में एक विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि जिन दिनों आप स्कूल मे शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, उस समय पंजाब के स्कूलों मे हिन्दी को कोई स्थान प्राप्त न था। शिक्षा का प्रारम्भ और मिडल तक का माध्यम भी उर्दू ही था। उर्दू के कारण क्लासिकल भाषा भी फारसी ही पढ़नी पड़ती थी। श्री सन्तराम जी ने भी बी० ए० तक यही भाषाएँ पढ़ीं। १६०६ की बी०ए० की परीक्षा में आप फारसी में सर्व प्रथम रहे थे। गवर्नमेंट कालेज लाहौर में तीसरे वर्ष की कक्षा में पढ़ते हुए आपने आर्यसमाज के संपर्क के कारण देवनागरी अक्षरों को सीखना शुरू किया। यह प्रसन्नता की बात है कि आपका हिन्दी प्रेम निरन्तर बढ़ता गया और सतत अध्यवसाय से आप शीघ्र ही हिन्दी के अच्छे लेखक माने जाने लगे।

श्री सन्तराम जी से पहले शायद ही पंजाब का कोई लेखक होगा जिस के लेखों को "सरस्वती" जैसी पत्रिका में स्थान मिल पाया हो और जिसे काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने पुरस्कृत किया हो। (आप को 'बालक' पर उक्त सभा की ओर से एक स्वर्णपदक मिला था) उस समय किसी पंजाबी लेखक को सरस्वती में स्थान मिलना और बनारस की उक्त संस्था द्वारा पुरस्कृत होना निःसंदेह पंजाब के लिये बड़े गौरव की बात समझी जाती थी। सरस्वती का सम्पादन, उन दिनों, पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी

कर रहे थे जो भाषा—और लेखकों के पूर्ण अनुशासन के लिये प्रसिद्ध हैं। द्विवेदी जी की पैनी दृष्टि ने श्री सन्तराम की अद्भुत प्रतिभा और साहित्यनिष्ठा को निःसंदेह भली प्रकार भाँप लिया था। इसी से उनकी भाषा-सम्बन्धी त्रुटियों का मर्षण कर के वे उन्हें स्वयं ठीक कर लिया करते थे और पत्र द्वारा लेखक को भी भाषा के परिष्कार की शिक्षा देते रहते थे। इस प्रकार श्री सन्तराम उन कतिपय लेखकों में से हैं जो द्विवेदी जी के प्रशिक्षण और प्रोत्साहन की साक्षात् उपज हैं।

श्री सन्तराम जी ने जीवनवृत्ति का प्रारम्भ अध्यापन कार्य से किया। परन्तु लिखने का आपको प्रारम्भ से ही शौक था। १९१४ से आपने 'उषा' नामकी एक मासिक पत्रिका निकाली जो डेढ़ वर्ष चल कर बन्द हो गई। तदनु आप कन्या महाविद्यालय जालन्धर की मुखपत्रिका 'भारती' का सम्पादन करने लगे। पीछे आपने लाहौर से 'क्रान्ति' (उर्दू) और उसके कुछ समय बाद 'युगान्तर' (हिन्दी) नाम से दो पत्र जारी किये जो पंजाब विभाजन तक बराबर चलते रहे। विभाजन के बाद आप अपने मूल ग्राम पुरानी बस्ती (जिला होशियारपुर) में चले गये और वहीं से आजकल 'विश्वज्योति' का सह-सम्पादन कर रहे हैं।

इसके अतिरिक्त आपकी लगभग ७५ पुस्तकें और ३०० से अधिक लेख प्रकाशित हो चुके हैं। पुस्तकों के विषय इतने विविध हैं कि आपकी बहुमुखी प्रतिभा पर आश्चर्य होता है। इनमें समाज सुधार, जातपांत का उच्छेद, इतिहास, यात्रा, नारीशिक्षा, शिशु-पालन, जीवन चरित, संततिनिग्रह, रतिशास्त्र, लोकव्यवहार ज्ञान आदि इनकी रचनाओं के प्रधान विषय हैं। आप जिस भी विषय पर लिखते हैं, उसमें आपकी लेखनी अबाध गति का परिचय देती है। आप की कुछ कृतियाँ पंजाब सरकार द्वारा पुरस्कृत भी हो चुकी हैं 'अलबेरूनी का भारत' पर आपको १२००) और 'इत्सिंग की भारत यात्रा' पर ६००) के पुरस्कार पंजाब सरकार द्वारा मिल चुके हैं।

आपकी प्रायः सभी रचनाएँ समाहारात्मक अधिक हैं, मौलिक कम। इनमें द्विवेदी परम्परा की समाहार भावना स्पष्ट दीख रही है। प्राचीनता का मोह और नवीनता का लोभ—इन दोनों का सुन्दर समन्वय इनमें है। हाँ, यह अवश्य है कि जहां द्विवेदी जी के निबन्धों में मनन और विचार सन्दीपन के अंशों की कमी है, वहां श्री सन्तराम जी के निबन्ध सूक्ष्म पर्यवेक्षण और विचारसन्धुक्षण की पुष्कल मात्रा प्रस्तुत करते हैं। किसी भी तत्व के विवेचन और विश्लेषण में आपके तर्क और मन्तव्य निस्संदेह मस्तिष्क के लिये पर्याप्त चिन्तन सामग्री उपस्थित करते हैं।

भाषा पर आपको असाधारण अधिकार प्राप्त है। इसमें गति है, प्रवाह है और है असीम भावक्षमता। शब्दावलि सरल पर यथार्थ, वाक्य छोटे पर सुसंयत और शैली

गम्भीर पर सुस्पष्ट है। पंजाबी होते हुए भी आपकी भाषा में पंजाबीपन की झलक तक नहीं आने पाई।

आर्यसमाज के सम्पर्क से जहां आपने हिन्दी को अपनाया वहां साथ ही समाजसुधार के बीज भी वहीं से प्राप्त किये। मेरी दृष्टि में श्री सन्तराम जी साहित्यक से कहीं बढ़ कर समाज-सुधारक हैं। समाज सुधार की पवित्र वेदी पर ही आपने अपनी समग्र विकसित; और अविकसित—शक्तियों की आहुति दे दी है। वस्तुतः आपकी साहित्यिक सक्रियता का प्रधान प्रेरणास्रोत भी समाजसुधार ही है।

इस रूप में श्री सन्तराम जी एक प्रांजल लेखक गम्भीर चिन्तक और कट्टर सुधारवादी हैं जिन पर पंजाब यथार्थ में गर्व कर सकता है। इस समय आप की आयु लगभग ७५ वर्ष की है। इस उमर में भी आप अपनी धुन में पहले की भांति पक्के हैं और अपनी निष्ठा और साधना में पूर्ववत् तन्मयता से तत्पर हैं।

सैक्रेटरी
पब्लीकेशन ब्यूरो
पंजाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़।

समाज सुधारक श्री संतराम

—डा० रामचरण महेन्द्र एम०ए० पी-एच० डी०

आज भारत में, और विशेषत: पंजाब में जो मुट्ठीभर समाज सुधारक जागरुक एवं विकास मान हैं, जिनमें हिन्दू धर्म और भारतीय संस्कृति के प्रति असीम अनुराग, प्रेम, त्याग, और देशसेवा की सच्ची भावना विद्यमान है, उनमें श्री संतराम जी प्रधान हैं। पंजाब में समाज-सुधार के क्षेत्र में, और आर्यसमाज की भावनाएँ फैलाने में आपका प्रमुख हाथ है। भारतीय हिन्दू समाज में आज जो कुरीतियां घर कर गई हैं, उन्हें जड़मूल से उखाड़ डालने, नवजीवन फूंकने, जाति-पांति, वर्ण भेद, छूतछात, रूढ़िवादिता का उन्मूलन करने तथा हिन्दुओं से जाति-भेद दूर करने में इस क्रांतिकारी की लेखनी सफल सिद्ध हुई है।

श्री सन्तराम ने अपने विद्वत्तापूर्ण लेखों, पुस्तकों, भाषणों, पत्रिकाओं के सम्पादन तथा क्रियात्मक रूप से जन-जागरण द्वारा पंजाब में ठोस कार्य किया है। इसके लिये हिन्दुसमाज उनका चिर ऋणी रहेगा। अन्तर में धधकती अग्नि छिपाये ज्वालामुखी सदृश उनका व्यक्तित्व है। संतराम जी के पीछे शताब्दियों की कुलीन संस्कृत है। उन्होंने समाज सुधार और आर्यसमाज की विचारधारा को फैलाने में अपना सम्पूर्ण जीवन होम कर दिया है। उन्होंने लेखन के क्षेत्र में ठोस कार्य किया है। एक से एक सुन्दर, अनुसंधानपूर्ण पुस्तकें हिन्दीजगत को दी हैं, पर उससे भी अधिक कार्य समाज सुधार और शुद्धि के क्षेत्र में किया है। इनके विचार और अनुभव प्रत्येक हिन्दू के कान खोलने वाले तथा निद्रा से जगाने वाले हैं। अपनी पुस्तकों —हमारा समाज, हिन्दुओं के लिए जीवन और मृत्यु का प्रश्न, इत्यादि में उन्होंने समाज का जो खाका खींचा है, हिन्दू समाज की रचना के जो दोष स्पष्ट किए हैं, साम्प्रदायिकता के जो कारण दिखाए हैं, वे प्रत्येक हिन्दू के मन में हलचल मचाने वाले हैं। उनकी सर्वोत्तम कृति "हमारा समाज" है जो उनके ३० वर्षों के अध्ययन, मनन, और अनुभव का परिणाम है। इसमें जाति-भेद से होने वाली सामाजिक, आर्थिक राजनैतिक और नैतिक बुराइयों को सिद्ध करने के लिए विद्वान् लेखक ने बहुत परिश्रम किया है। इसे उनका थीसिस कहा जा सकता है। यही उनका प्रिय विषय भी रहा है।

उन्होंने जहां लेखनी द्वारा हिन्दू धर्म की कमजोरियों की ओर ध्यान आकर्षित किया है वहाँ साथ ही क्रियात्मक उपायों द्वारा वे पंजाब में निस्पृह रूप से समाज सुधार के शत-शत

कार्य करते रहे हैं। उनका विचार है कि शुद्धि, अछूतोद्धार, हिन्दु संगठन, वर्ण, जाति-पांति बहिष्कार के बिना राष्ट्रीय उन्नति असंभव है। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि यदि हिन्दुओं ने जाति-भेद को न मिटाया, तो जातिभेद हिन्दुओं को अवश्य मिटा देगा। वर्णभेद के नाश से ही बनिये, जाट, कायस्थ और भूमिहर का उत्पात दूर हो सकता है। हिन्दू समाज की विपन्नावस्था के बड़वानल के उद्गारों से विलोड़ित महोदधि का कम्पन इस समाज-सुधारक के लेखों में प्राण भरता रहा है। लाहौर से उन्होंने "क्रांति" नामक एक पत्रिका निकाली थी। उनका "युगान्तर" समाज का कटु आलोचक रहा है।

संतराम जी ने अनेक विषयों पर अधिकार पूर्वक लिखा है—इतिहास,सेक्स, दाम्पत्य विज्ञान, जीवन चरित, अध्यात्म, बाल साहित्य, धर्म, अनुवाद। सेक्स उनका प्रिय विषय रहा है। इस पर उनकी "रति-विज्ञान" विवाहित प्रेम, रतिविलास, आदर्श पत्नी, दम्पत्ति–मित्र उल्लेखनीय पुस्तकें हैं। "कर्म मार्ग" और "दिव्यशक्ति" आध्यात्म के क्षेत्र महत्वपूर्ण कृतियां हैं। "लोक व्यवहार" कर्नेगी की पुस्तक का सुन्दर अनुवाद है। "अलबेरूनी का भारत" पर पंजाब सरकार ने उन्हें १२००) रु० का तथा "इत्सिंग की भारत यात्रा" पर ६००) का पारितोषिक दिया था, जो उनकी पुस्तकों की श्रेष्ठता का प्रतीकमात्र था। उनके अनेक लेख अभी विभन्न पत्र पत्रिकाओं में बिखरे पड़े हैं। जिन्हें एक बड़े संस्करण में संयुक्त रूप से प्रकाशित करने की आवश्यकता है।

श्री संतराम पंजाब के उन गिने चुने वयोवृद्ध साहित्य सेवियों में हैं, जिन्होंने सस्ते यश और प्रसिद्धि या लोभ की कभी परवाह नहीं की, प्रत्युत सदा निःस्वार्थ भाव से एक अहिन्दी प्रान्त में हिन्दी साहित्य के रिक्त अंशों को भरा है, जिसके लिये हिन्दी पाठक समुदाय और हिन्दू समाज सदा उनका ऋणी रहेगा।

श्री संतराम जी से मुझे एक भेंट का अवसर मिला। यह २३ जून १९५७ का दिन था। यह दिन मेरे साहित्यिक जीवन की एक चिरस्मरणीय घटना रहेगी, क्योंकि इस दिन इस वयोवृद्ध साहित्यिक के साथ कुछ समय व्यतीत करने का पुण्य अवसर प्राप्त हुआ था। उनसे बातें हुई। यहां उसी भेंट का एक वर्णन दिया जा रहा है।

"आपकी आयु क्या होगी ?" हमारी बातचीत इसी प्रसंग से शुरू हुई। वे बोले, "मेरा ७०वां वर्ष चल रहा है।" इस पर मेरे साथ चलने वाले एक सज्जन बोले, "अजी साहब, इन्होंने ७० दीवालियां देखी हैं"।

"आपका स्वास्थ्य अब भी बहुत सुन्दर है। आप किस प्रकार अपने को स्वस्थ रखते हैं ?" मैंने पूछा।

एक बार गौर से मुझे देख कर बोले, "आप कृशकाय हैं। पिछले दिनों बीमार भी रह चुके हैं। ये सब लक्षण आपके दीर्घ जीवन की निशानियां हैं।"

मैंने पूछा, "यह कैसे ? यह बात तो कुछ विरोधी सी प्रतीत होती है। इस पर उन्होंने उत्तर दिया—"बात यह है कि हमारी ये बीमारियां हमें जीवन के प्रति सजग -सावधान करने आती हैं । जो व्यक्ति शुरु में बीमार हो जाता है वह अन्त तक स्वास्थ्य के प्रति सावधान रहता है। आगे बीमार नहीं पड़ता और अधिक जीता है। मैं स्वयं शुरू से ही बहुत बीमार रहता था।सतत परिश्रम द्वारा मैंने अपने को स्वस्थ किया है। टहलना मेरा प्रमुख व्यायाम है । ग्रामीण कार्यों के प्रति मेरी सहज अभिरुचि है। मेरा जीवन निश्चिन्त है। भोजन सीदा साधा है। इसी कारण मैं पूर्ण स्वस्थ हूं।"

मैंने देखा संतराम जी बातचीत के दौरान में अनेक बार हंसते हैं। इससे उनकी बातचीत भी सरस हो उठती है। कहने लगे, "प्रसन्न रहने तथा हंसने की इस आदत ने मुझे स्वस्थ रहने में प्रचुर सहायता दी है। पहले मैं गुमसुम दार्शनिकों जैसा रहता था, पर धीरे-धीरे मैंने अपने स्वभाव की इस कमजोरी को दूर किया है और हंसने का अभ्यास किया है।"

धीरे २ हमारी बातचीत उनके उद्देश्य और साहित्य पर आई। पचास वर्षों से हम उनकी रचनाएँ पढ़ते आ रहे हैं। मैंने पूछा, "आपकी साहित्य-साधना किस प्रकार प्रारंभ हुई ?"

वे बोले, "मैं प्रारंभ में प्रेमचन्द जी की तरह उर्दू में लिखा करता था। पहली बार एक लख कोई ५० वर्ष पूर्व 'सरस्वती' में छपने भेजा था। श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी ने मुझे लिखा था कि "इस लेख को ठीक करने में मुझे चार दिन लगेंगे।" मैंने द्विवेदी जी से प्रार्थना की कि वे कृपया यह कार्य कर मेरा मार्ग दर्शन करें। उनसे कोई ऐसा कोष भी पूछा जिससे उर्दू वाले हिन्दी सीख सकें। द्विवेदी जी इस ओर मेरी सहायता करते रहे। "सरस्वती" में जब वह लेख छपा, तो बिल्कुल बदला हुआ था। मैंने उसे ध्यान से पढ़ा। जहां जहां परिवर्तन किए गये थे, वे सभी स्थल विशेष सावधानी से देखे। फिर उसी प्रकार अभ्यास करता रहा। धीरे-धीरे उर्दू छोड़ मैं हिन्दी में आ गया और मुझे हिन्दी का अभ्यास हो गया।"

मेरा अगला प्रश्न था, "आपके साहित्य का मूल स्वर क्या है।? आप का उद्देश्य क्या रहा है ? "

वे शान्त संयत स्वर में बोले, "मैं मूलत: विचारक हूँ। नैतिक श्रेष्ठता, चरित्र निर्माण समाज से गन्दगी दूर करना, अनीति अत्याचार तथा अन्याय के विरुद्ध आवाज़ ऊंची करना ही मेरा उद्देश्य रहा है। जब उच्च वर्ण निम्न वर्णों की गरीबी और अशिक्षा से अनुचित लाभ उठाते हैं, तो मुझे बड़ी चिढ़ लगती है। मैंने साहित्य और अपने जीवन में सदा उन्हीं के पक्ष की वकालत की है। मेरे साहित्य में शोषितों के प्रति सहानुभूति और समाजसुधार की यह भावना सर्वत्र फैली हुई है। यदि आप लोक कल्याण को साहित्य का ध्येय मानते हों, तो मैं

भी एक साहित्यकार हूँ। नहीं तो मैं आर्यसमाज का एक उपदेशक या विचारक मात्र ही हूँ। प्रारम्भ से मैं हिन्दू समाज की त्रुटियों को दूर करने का प्रयत्न करता रहा हूँ। आज मैं देखता हूँ कि धीरे २ जातपांत के बन्धन ढीले होते जा रहे हैं। निम्न वर्गों में भी पर्याप्त जागृति आ गई है। संकुचितता के स्थान पर उदारता आ रही है। मुझे ये सब समाज की उन्नति के शुभ लक्षण प्रतीत होते हैं।"

मेरा अगला प्रश्न था, "आपकी राय में हिन्दू समाज की उन्नति कैसे हो सकती है?"

इस पर संतराम जी की दिलचस्पी बढ़ी, क्योंकि यही उनका प्रिय विषय है। वे बोले, "यह तो मेरे जीवन का मिशन ही रहा है। मैं जात-पांत को हिन्दुओं की अवनति का प्रधान कारण मानता हूँ। "हमारा समाज" पुस्तक मेरे २५ वर्षों के अध्ययन और अनुभव का निष्कर्ष है। इसमें मैंने वेद, स्मृति, पुराण आदि प्राचीन ग्रंथों से प्रमाण के आधार पर जाति भेद की हानियां दिखाई हैं। जाति-पांति का भेदभाव, समता, बन्धुता, स्वतन्त्रता एवं लोकराज्य का विरोधी है। वह मनुष्य और मनुष्य के बीच घृणा और फूट का कारण है। इसके रहते भारत कभी एक सुदृढ़ राष्ट्र नहीं बन सकता। यहाँ जितनी जातियां हैं, उतने ही राष्ट्र हैं। इससे यहां बसने वाली प्रत्येक जाति के आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक हित दूसरी जाति के हितों से टकराते हैं। अपनी छोटी सी जाति के भीतर विवाह शादी करने से व्यक्ति का सर्वांगीण विकास नहीं हो पाता। हिन्दू किसी पराये को अपना नहीं बना सकते। इसके विपरीत करोड़ों जातियाँ दूसरों को अपने अन्दर पचा चुकी हैं। इसी स अनमेल विवाह और भारी दहेज़ की कुप्रथा चली है। किसी जाति में लड़कियां कम और लड़के अधिक और किसी में लड़कियां अधिक और लड़के कम हैं। इससे अनाचर फैलता है। हिन्दू समाज और जातिपांति इकट्ठे नहीं रह सकते। यदि जातिपांति रहेगी, तो हिन्दू समाज का ही नहीं, हमारी स्वतन्त्रता का भी अन्त हो जायेगा।"

यह कहते २ उनका स्वर उच्छ्वास से पूर्ण हो उठा था। सचमुच उनमें बहुत जीवन है। खेद है कि उनके नेत्रों में मोतिया बिन्दु उतर आया है, बहुत कम देख पाते हैं, फिर भी नई पुस्तकें लिखते रहते हैं। इस महान् लेखक से मिल कर हमने जीवन के दो सूत्र सीखे हैं—अपने उद्देश्य के प्रति अखण्ड विश्वास और उसकी प्राप्ति के लिए-सतत प्रयत्न! संतराम जी से मिलकर एक व्यक्ति से मिलने का नहीं, एक विशाल साधनामंदिर में कुछ क्षण बिताने का सुख मिला।

प्रोफेसर, गवर्नमेंट कालेज, कोटा (राजस्थान)

मैंने पूछा, "यह कैसे ? यह बात तो कुछ विरोधी सी प्रतीत होती है। इस पर उन्होंने उत्तर दिया—"बात यह है कि हमारी ये बीमारियां हमें जीवन के प्रति सजग -सावधान करने आती हैं। जो व्यक्ति शुरु में बीमार हो जाता है वह अन्त तक स्वास्थ्य के प्रति सावधान रहता है। आगे बीमार नहीं पड़ता और अधिक जीता है। मैं स्वयं शुरू से ही बहुत बीमार रहता था।सतत परिश्रम द्वारा मैंने अपने को स्वस्थ किया है। टहलना मेरा प्रमुख व्यायाम है। ग्रामीण कार्यों के प्रति मेरी सहज अभिरुचि है। मेरा जीवन निश्चिन्त है। भोजन सीदा साधा है। इसी कारण मैं पूर्ण स्वस्थ हूं।"

मैंने देखा संतराम जी बातचीत के दौरान में अनेक बार हंसते हैं। इससे उनकी बातचीत भी सरस हो उठती है। कहने लगे, "प्रसन्न रहने तथा हंसने की इस आदत ने मुझे स्वस्थ रहने में प्रचुर सहायता दी है। पहले मैं गुमसुम दार्शनिकों जैसा रहता था, पर धीरे-धीरे मैंने अपने स्वभाव की इस कमजोरी को दूर किया है और हंसने का अभ्यास किया है।"

धीरे २ हमारी बातचीत उनके उद्देश्य और साहित्य पर आई। पचास वर्षों से हम उनकी रचनाएँ पढ़ते आ रहे हैं। मैंने पूछा, "आपकी साहित्य-साधना किस प्रकार प्रारंभ हुई ?"

वे बोले, "मैं प्रारंभ में प्रेमचन्द जी की तरह उर्दू में लिखा करता था। पहली बार एक लख कोई ५० वर्ष पूर्व 'सरस्वती' में छपने भेजा था। श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी ने मुझे लिखा था कि "इस लेख को ठीक करने में मुझे चार दिन लगेंगे।" मैंने द्विवेदी जी से प्रार्थना की कि वे कृपया यह कार्य कर मेरा मार्ग दर्शन करें। उनसे कोई ऐसा कोष भी पूछा जिससे उर्दू वाले हिन्दी सीख सकें। द्विवेदी जी इस ओर मेरी सहायता करते रहे। "सरस्वती" में जब वह लेख छपा, तो बिल्कुल बदला हुआ था। मैंने उसे ध्यान से पढ़ा। जहां जहां परिवर्तन किए गये थे, वे सभी स्थल विशेष सावधानी से देखे। फिर उसी प्रकार अभ्यास करता रहा। धीरे-धीरे उर्दू छोड़ मैं हिन्दी में आ गया और मुझे हिन्दी का अभ्यास हो गया।"

मेरा अगला प्रश्न था, "आपके साहित्य का मूल स्वर क्या है।? आप का उद्देश्य क्या रहा है ? "

वे शान्त संयत स्वर में बोले, "मैं मूलतः विचारक हूँ। नैतिक श्रेष्ठता, चरित्र निर्माण समाज से गन्दगी दूर करना, अनीति अत्याचार तथा अन्याय के विरुद्ध आवाज़ ऊंची करना ही मेरा उद्देश्य रहा है। जब उच्च वर्ण निम्न वर्णों की गरीबी और अशिक्षा से अनुचित लाभ उठाते हैं, तो मुझे बड़ी चिढ़ लगती है। मैंने साहित्य और अपने जीवन में सदा उन्हीं के पक्ष की वकालत की है। मेरे साहित्य में शोषितों के प्रति सहानुभूति और समाजसुधार की यह भावना सर्वत्र फैली हुई है। यदि आप लोक कल्याण को साहित्य का ध्येय मानते हों, तो मैं

भी एक साहित्यकार हूँ। नहीं तो मैं आर्यसमाज का एक उपदेशक या विचारक मात्र ही हूँ। प्रारम्भ से मैं हिन्दू समाज की त्रुटियों को दूर करने का प्रयत्न करता रहा हूँ। आज मैं देखता हूँ कि धीरे २ जातपांत के बन्धन ढीले होते जा रहे हैं। निम्न वर्गों में भी पर्याप्त जागृति आ गई है। संकुचितता के स्थान पर उदारता आ रही है। मुझे ये सब समाज की उन्नति के शुभ लक्षण प्रतीत होते हैं।"

मेरा अगला प्रश्न था, "आपकी राय में हिन्दू समाज की उन्नति कैसे हो सकती है ?"

इस पर संतराम जी की दिलचस्पी बढ़ी, क्योंकि यही उनका प्रिय विषय है। वे बोले, "यह तो मेरे जीवन का मिशन ही रहा है। मैं जात-पांत को हिन्दुओं की अवनति का प्रधान कारण मानता हूँ। "हमारा समाज" पुस्तक मेरे २५ वर्षों के अध्ययन और अनुभव का निष्कर्ष है। इसमें मैंने वेद, स्मृति, पुराण आदि प्राचीन ग्रंथों से प्रमाण के आधार पर जाति भेद की हानियां दिखाई हैं। जाति-पांति का भेदभाव, समता, बन्धुता, स्वतन्त्रता एवं लोकराज्य का विरोधी है। वह मनुष्य और मनुष्य के बीच घृणा और फूट का कारण है। इसके रहते भारत कभी एक सुदृढ़ राष्ट्र नहीं बन सकता। यहाँ जितनी जातियां हैं, उतने ही राष्ट्र हैं। इससे यहां बसने वाली प्रत्येक जाति के आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक हित दूसरी जाति के हितों से टकराते हैं। अपनी छोटी सी जाति के भीतर विवाह शादी करने से व्यक्ति का सर्वांगीण विकास नहीं हो पाता। हिन्दू किसी पराये को अपना नहीं बना सकते । इसके विपरीत करोड़ों जातियाँ दूसरों को अपने अन्दर पचा चुकी हैं। इसी स अनमेल विवाह और भारी दहेज़ की कुप्रथा चली है। किसी जाति में लड़कियां कम और लड़के अधिक और किसी में लड़कियां अधिक और लड़के कम हैं। इससे अनाचर फैलता है। हिन्दू समाज और जातिपांति इकट्ठे नहीं रह सकते। यदि जातिपांति रहेंगी, तो हिन्दू समाज का ही नहीं, हमारी स्वतन्त्रता का भी अन्त हो जायेगा।"

यह कहते २ उनका स्वर उच्छवास से पूर्ण हो उठा था। सचमुच उनमें बहुत जीवन है। खेद है कि उनके नेत्रों में मोतिया बिन्दु उतर आया है, बहुत कम देख पाते हैं, फिर भी नई पुस्तकें लिखते रहते हैं। इस महान् लेखक से मिल कर हमने जीवन के दो सूत्र सीखे हैं—अपने उद्देश्य के प्रति अखण्ड विश्वास और उसकी प्राप्ति के लिए-सतत प्रयत्न ! संतराम जी से मिलकर एक व्यक्ति से मिलने का नहीं, एक विशाल साधनामंदिर में कुछ क्षण बिताने का सुख मिला।

प्रोफेसर, गवर्नमेंट कालेज, कोटा (राजस्थान)

भाषा के उद्धारक, सुधार के भागीरथ श्री संतराम जी

श्री सोहन लाल शास्त्री

आज से आधी शताब्दी पूर्व पंजाब में उर्दू–फारसी का बोल बाला था। आर्य–समाज और तत्पश्चात् सनातन धर्म ने हिन्दी का प्रचार तो आरम्भ कर दिया था, किन्तु उस समय उर्दू पढ़ा लिखा व्यक्ति ही मठित या शिक्षित माना जाता था। पंजाब सरकार का सारा कार्य उर्दू या अंग्रेजी में होता था। हिन्दी को महिलाओं की भाषा समझा जाता था। माता–पिता अपने लड़कों को उच्च शिक्षा में भी उर्दू फारसी का विषय लेने के लिए बाधित करते थे क्योंकि उसे पढ़े बिना पंजाब में न सरकारी नौकरी मिलती थी और न ही अन्य लौकिक व्यवहार चलते थे। आदरणीय पं० संत राम जी ने भी गवर्नमेंट कालेज लाहौर में बी० ए० तक उर्दू फारसी का ही अध्ययन किया और शेख सादी, हाफिज़ और मौलाना रूमी आदि फारसी कवियों के काव्यों को पढ़ा। किन्तु फिर भी अपने युवाकाल से लेकर अब तक लगभग आधी शताब्दी तक वह हिन्दी भाषा को ही अपना सर्वस्व मानकर इतनी दीर्घ साधना में जुटे रहे हैं और बीसियों वर्ष प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझते रहे हैं। हमारे विचार में पंडित संत राम जी भली प्रकार जानते थे कि जिस मार्ग पर वह चले हैं वह न तो उन्हें आर्थिक तौर पर और न ही आत्म–प्रसिद्धि में सहायक सिद्ध होगा, किन्तु स्वान्त–सुखाय अथवा हिन्दू संस्कृति की समुन्नति उनके जीवन का मिशन बन चुकी थी। सच्चा मिशनरी अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए जीता है और उसी के लिये मरता है। उसे सांसारिक प्रलोभन और व्यवहारिक कठिनाइयां उसक ध्येय से च्युत नहीं कर सकतीं। पंडित संत राम जी ने आजीवन आर्थिक कठिनाइयों का सामना किया किन्तु वे अपने जीवन के चरम लक्ष्य से इंच भर भी पीछे न हटे। एक अहिन्दी–भाषा प्रांत में पैदा होकर वहां निरन्तर पचास बरस तक हिन्दी के प्रचार, प्रसार तथा उसकी उन्नति के लिए अनेक विघ्न बाधाओं से जूझते हुए भी निरन्तर अपने पथ पर अग्रसर होते रहना श्री सन्तराम जी जैसे कर्मठ व्यक्ति का ही काम था।

पंडित जी ने पचास से ऊपर हिन्दी ग्रन्थ लिखे हैं। साहित्य निर्माण में आपका लक्ष्य जनता का मनोरंजन न होकर सामाजिक चेतना को जागरूक करना तथा व्यक्ति और पारिवारिक जीवन के व्यवहारिक पहलुओं को उद्बोधित करना ही रहा है। विदेशी ग्रन्थों का अनुवाद करते हुए भी आपको सदैव इस बात का ध्यान रहा है कि ऐसे

विषयों पर लिखे ग्रन्थ ही हिन्दी में अनूदित किये जायें जो हमारे व्यक्तिगत तथा जातीय जीवन को सफल बनाने में सहायक हों। आपने कारनेगी के प्रसिद्ध ग्रन्थ (How to win friends and influence people) का हिन्दी में अनुवाद किया जो हमारे व्यवसायी वर्ग के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ। "हमारा समाज" नामक ग्रन्थ हिन्दू समाज के रोगों का नग्नचित्र होने के साथ उन रोगों के विनाश के लिए चरक तथा सुश्रत की भांति सामाजिक रोगों का चिकित्सा ग्रन्थ भी है। "हमारे बच्चे" पंडित जी की ऐसी रचना है जिसमें गृहस्थी को अपनी संतान को आदर्श बनाने के लिए अनेक मनोवैज्ञानिक नुस्खे भरे पड़े हैं। भारतीय संस्कृति के अद्भुत प्रेम ने पंडित जी को बीसियों बरस पहले 'इत्सिंग की भारत यात्रा' लिखने के लिए प्रेरित किया। पंडित जी ने बरसों पहले 'रति विज्ञान', नामक एक ग्रन्थ की रचना की थी जो उस समय पर्याप्त आलोचना का विषय हुई किन्तु आज भारतीय विद्वानों को इस विषय की उपादेयता का पूरा अहसास हो रहा है। पंडित संत राम जी के हिन्दी अनुवादों को पढ़कर सहसा मानना पड़ता है कि वे मौलिक ग्रन्थ हैं। पंडित जी की पचास बरस की साधना का केन्द्र बिन्दु हिन्दी भाषा के कोश को ऐसे मौलिक तथा अनूदित ग्रन्थों से भरपूर करना रहा है जो भारतीय संस्कृति तथा हिन्दू समाज को समुन्नत करने का साधन बन सकते हैं।

हिन्दू-समाज सुधार की दृढ़लगन

पंडित संत राम जी के सारे जीवन में हम तीन धुनों का समावेश पाते हैं। हिन्दी भापा की अनन्य सेवा, हिन्दू समाज सुधार की अनन्य लगन तथा सादगी-भरा नियमित जीवन। उनकी हिन्दी सेवाओं का साधारण दिग्दर्शन कराना अधूरा रहेगा यदि हम उन की हिन्दू समाज सुधारक भीष्म प्रतिज्ञा को भूल जायें। भारत में न मालूम कितने लोगों का नाम संत राम होगा किन्तु "जात-पांत तोड़क" संत राम जी सारे भारत में अकेले ही हैं। आपने लाहौर से 'क्रांति' और 'युगांतर' मासिक पत्रिकाओं द्वारा हिन्दू समाज की जात-पांत और ऊंच-नीचता के विरुद्ध सलीबी युद्धों से कम लड़ाई नहीं लड़ी।

अनेकों हिन्दी ट्रैक्ट और लघु पुस्तिकाएं लिख कर आपने हिन्दू समाज को जात-पांत के भीषण रोग स मुक्त करने के लिए कठिन परिश्रम और साहस किया है। भारत की कोई भी ऐसी हिन्दी पत्रिका नहीं होगी जिसमें गत तीस-पैंतीस बरसों से पंडित जी ने जाति-पांति के विरुद्ध लेख न लिखे हों। स्वतंत्र भारत के संविधान में जाति-विहीन समाज की कल्पना से चौथाई शताब्दी से भी पहले श्री संत राम जी जाति-पांति विहीन समाज की दाग़ बेल डाल चुके थे, और इस प्रचार में यहां तक तल्लीन थे कि आम लोग उन्हें जात-पांत तोड़क मेनिया (खब्त) का मरीज़ कह कर उनकी हंसी तक

उड़ाते रहे । किन्तु कहना पड़ेगा कि इस दृढ़व्रती ने जिन दो ध्येयों को अर्थात् हिन्दी भाषा की उन्नति तथा हिन्दू समाज को जाति–पांति के दोष से मुक्ति को आज से अर्ध शताब्दी पहले अपनाया था अब उसे इन दोनों तथ्यों का सारे भारत के राजनीतिक प्रतिनिधियों ने भारत के संविधान में स्वीकार करके श्री संतराम जी को गौरवान्वित कर दिया है ।

सादगी तथा सरलता का नमूना

सम्भवतः श्री संतराम जी के सम्पर्क में मैं सन् १९२९ में आया हूंगा । मैंने उन्हें सदा भारतीय वेश–भूषा में ही देखा । यहां तक कि उन्हें पुराने पंजाबी फैशन की जूती और धोती पायजामा ही पहने पाया । उनका लिबास देख कर कोई भी व्यक्ति उन्हें हिन्दी का उद्भट विद्वान तथा गवर्नमेंट कालेज लाहौर का पुराना ग्रेजुएट नहीं मान सकता । भ्रमण उनका अटल और अचूक नियम है । भोजन में अत्यन्त सादगी बरतना उनका स्वभाव बन चुका है । आत्म श्लाघा तथा निज ख्याति से कोसों दूर रहने वाला हिन्दी जगत का वयोवृद्ध यह महारथी अपनी मिसाल आप है । संस्कृत के ख्यातनामा महाकवि भवभूति ने आप जैसे मौन साधकों के लिए ही कहा था—

"उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समान धर्मा,
कालोह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ।।

अर्थात् क्या हुआ जो आज हमारा कोई पारखी नहीं परन्तु पृथ्वी विशाल है और काल अवधि रहित है । किसी न किसी समय किसी स्थान पर हमारी साधना, तपस्या और गुणों का कोई पारखी अवश्य उत्पन्न होगा । हमें यह कहते हुए अत्यन्त प्रसन्नता होती है कि दो बरस पूर्व पंडित संत राम जी को मध्य प्रदेश की हिन्दी परिषद् ने हिन्दी सेवाओं का ध्यान रखते हुए धनराशि तथा आदर से सम्मानित किया था । अब पंजाब सरकार भी अपना कर्त्तव्य निभा रही है । इस गुण ग्राहकता के लिए पंजाब सरकार भी प्रशंसा की पात्र है । हमारी अन्तरात्मा उस दिन की प्रतीक्षा में है जब भारत सरकार का शिक्षा मंत्रालय हिन्दी जगत के इस मौन साधक तथा वयोवृद्ध कर्मठ लेखक को सम्मानित करके अपने सही पारखीपन तथा निष्पक्षता का सबूत देगा ।

अधीक्षक अनुवाद विभाग विधिमन्त्रालय, भारत सरकार ।

हमारी मनोकामना है कि पंजाब में हिन्दी के वयोवृद्ध महारथी तथा हिन्दू समाज सुधार के दूसरे भागीरथ श्री संत राम जी पूरी शताब्दी के चौथे चरण के पूरे होने तक स्वस्थ रहें और हिन्दी के कोश में कुछ और बहुमूल्य रत्नों की वृद्धि कर जायं ।

तब और अब : श्री संत राम जी

श्री उमा दत्त

आज से लगभग चवालीस वर्ष पूर्व की बात है । जालंधर शहर में अड्डा होशियार पुर से जो सड़क होशियारपुर को जाती है उस पर रेलवे लाइन का फाटक पार कर के चार सौ गज के फासले पर एक आटे की चक्की हुआ करती थी जिस का नाम सालिग फलोर मिल्ज़ था—एक दिन उधर से गुजरते हुए मैं ने उस सड़क के किनारे जो मिल का दफतर था उस की दीवार पर एक साइनबोर्ड लटकते हुए देखा जिस पर "भारती" लिखा हुआ था—पूछने पर पता लगा कि यहां से इस नाम की एक मासिक पत्रिका निकलने लगी है जिस के सम्पादक एक सज्जन हैं जिन का नाम महाशय संतराम है। युवावस्था से ही मुझे समाचार पत्रों के पढ़ने का बड़ा शौक था और उन के पहले पृष्ठ पर जब मैं सम्पादकों का नाम छपा हुआ देखता था तो मेरे मन से एक हूक सी उठती थी कि क्या कभी मेरा नाम भी ऐसे ही छपा करेगा—मैं ने तब तक कोई सम्पादक सज्जन नहीं देखे थे इस लिए दिल ही दिल में अनुमान लगा रक्खा था कि वह कोई बड़े सुन्दर बलिष्ठ शरीर वाले और सम्पन्न, बड़ी ठाठ बाठ से रहने वाले भद्र पुरुष होंगे जिन की बहुत प्रसिद्धि होगी तभी तो उन का नाम समाचार पत्र के पहले पृष्ठ पर हर बार छपता है। मन में प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई कि इन श्री संतराम के दर्शन करें तो पता चले कि सम्पादक कैसे होते हैं—कई दिन तक बराबर उस साइनबोर्ड को खड़ा हो कर निहारता रहता था किन्तु अंदर आने का साहस न कर पाता—आखिर एक दिन जब बिल्कुल ही रहा न गया तो बहुत हिम्मत बांध कर चला गया । एक कमरा है जिस में एक चारपाई मेज़ और कुर्सी रक्खी हुई है—मेज़ पर कुछ किताबें पड़ी हैं और दो चार कागज़। चारपाई पर एक लम्बा दुबला पतला युवक बैठा है जो गाड़े का कमीज पहने हुए है । समझा कोई देहाती बैठा है। मैं ने उस से पूछा श्री संत राम जी कहां हैं। यह सुन कर वह नौजवान उठ बैठा और मुसकरा कर कहने लगा—आइए बैठिए—मेरा ही नाम संतराम है—मैं यह सुन कर कांप गया "अरे यही संतराम हैं जो सम्पादक हैं।" सम्पादक की जो मूर्ति मैं ने अपने मन में गढ़ रक्खी थी उस से बिल्कुल उल्टा दृष्टिगोचर हुआ। मैं बहुत घबरा गया । वे मेरा सब स्थिति ताड़ गए । उठ कर धीरे से एक कुर्सी मेरे पास रख दी और मुसकरा कर बोले "क्या आप भी कुछ लिखा करते हैं मुझ को भी कुछ लिख कर देना । मैं अपनी पत्रिका में उस को छाप दूंगा ।"

यह मेरा उन से प्रथम परिचय था । इस के पश्चात् हमारा मिलना—जुलना खूब बना रहा । मेरी कुछ कहानियां और लेख "भारती" में छपे । इन्हीं दिनों उन्हों ने अपनी पुस्तक "आदर्श पत्नी" लिखी थी जिस से पहली बार साहित्यक क्षेत्र में उन की कुछ ख्याति हुई—इस के दो वर्ष पश्चात् वे लाहौर चले आए । यहां आ कर उन्हों ने उर्दू की एक मासिक पत्रिका

निकाली जिस का नाम "क्रांति" था । इन के सहकारी श्री महानन्द थे जो अपनी एक अलं मासिक पत्रिका "रहनुमाए जिन्दगी" निकाला करते थे । तभी से इन दोनों सज्जनों ने मिल क "जाति पाति तोड़क मंडल" की नींव धरी और इन दोनों पत्रिकाओं में इस अन्दोलन पर उन बड़े जबरदस्त लेख छपा करते थे । इन दोनों पत्रिकाओं के लेख और कहानियां बहुत ही रोच और बढ़िया हुआ करती थीं। इस लिए इन दोनों पत्रिकाओं की बहुत ख्याति थी और जनसा-धारण में दोनों बहुत लोक प्रिय थे । जब देश का विभाजन हुआ तो इन दोनों पत्रिकाओं व कार्यालय देहली में चले आए । किंतु देहली का वातावरण श्री संतराम जी को पसन्द नह आया और वो शीघ्र ही वहां से लौट कर अपने मातृभूमि ग्राम पुरानी बसी जिला होशियारपु में चल आए । और तब से आज तक वहीं निवास करते हैं। खेद है कि तब "क्रांति" बन्द हो गई थी किंतु देहली से श्री महानन्द जी अब भी बड़ी धूम धाम से "रहनुमाए जिन्दगी" पत्रिक निकालते हैं ।

पंजाब में "संतराम " नाम के व्यक्तियों का बाहुल्य है किंतु संतराम, बी० ए० केवल एक ही व्यक्ति हैं और वे हैं यही हमारे महाशय संत राम जी–इन के लेखों में इतना रस औ आर्कष्ण है कि जहां किसी समाचार पत्र में लेखक का नाम संत राम, बी० ए० पाठक देखत है वह सब से पहले उसी लेख को बड़े चाव और ध्यान के साथ पढ़ता है । कारण यह है कि व केवल लिखने की खातिर नहीं लिखते । वे केवल तभी लिखते हैं और वही लिखते हैं जब उन क आत्मा से सच्ची आवाज़ उठती है । बेकार शब्दों के आडम्बर में वे नहीं पड़ते । सीधी सादं भाषा और सरल शब्दों में वे अपना संदेश सब को सुनाते हैं और इस प्रकार कहते हैं कि पाठ के हृदयों में वो उतरता चला जाता है और अंत में उन को विश्वास हो जाता है कि जो कुछ इन्हों ने कहा है वह सर्वथा सत्य तथा उपयुक्त है और जो कोई इस से विभिन्न कहता है व ग़लत कहता है । इस के अतिरिक्त जिन सिद्धांतों का वो प्रचार करते हैं उस पर स्वयं भी क बद्ध रहते हैं–उन की वर्तमान धर्मपत्नी महाराष्ट्र देश, अपने से पृथक जाति और वर्ण कं एक कुशाग्र बुद्धि सुसंस्कृत व्यवहार वाली और इन ही की नाँई पूर्ण स्वस्थ तथा सदा मुस्करा वाली महिला है । उन्हों ने जाति पाति तोड़ कर यह संबन्ध किया है और यही उन के कार की सफलता का एक बड़ा हेतु है ।

श्री सन्तराम जी ने बहुत सी पुस्तकें लिखी हैं । इन में से कुछ कहानियों के संग्रह हैं कुछ बालकोपयोगी उपदेश भरी छोटे छोटे लेखों की पुस्तिकाएं हैं किन्तु उन की सब से महान कृति उन की पुस्तक "हमारा समाज" है । यह अपने विषय का एक ही ग्रन्थ है जिस में विद्वान लेखक ने प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर तथा इतिहास से अनेक उदाहरण दे कर अपने पक्ष तथा सिद्धांत को पूर्ण रूप से प्रमाणित किया है । इस के अतिरिक्त उन्हों ने दर्जन भर छोटे छोटे ट्रैक्ट लिखे हैं । उन के जीवन का सब से बड़ा लक्ष्य "जाति पांति तोड़क मंडल" रहा है– हिन्दुओं में जो इतनी जातियों तथा उपजातियों का जाल चारों वर्णों में बिछा हुआ है इस को वो

एक दम समाप्त कर देना चाहते हैं । उन का कहना है कि हिन्दु जाति विशाल भवन के चार वर्ण वनाकर हम ने पहले ही इस को चार घरों में विभाजित कर दिया था । अब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र की भी आगे वहुत सी उपजातियां बनाकर इन घरों में भी प्रतिघर बहुत से घरौदें खड़े कर दिए हैं जो आपस में भी रोटी बेटी का सम्बन्ध नहीं करते जिस से इस भवन की दीवारों में वड़ी दरजें पड़ गई हैं और इमारत अन्दर ही अन्दर खोखली होती जा रही हैं । न केवल ये उपजातियां वरन् ये चारों मुख्यवर्ण भी तुरंत समाप्त कर दिए जाने चाहिएं । उन के विचार के अनुसार यह तभी सम्भव है जब विना किसी भेद के अंतर्जातीय विवाह होने लग जाएंगे और इस के विकास के लिए ये यहां तक जाने को तैयार हैं कि यदि सरकार हिन्दुओं में अपनी जाति के अंदर विवाह को सर्वथा अवैधानिक नियत कर दे तो बहुत ही अच्छा होगा क्योंकि अभी हमारा समाज इतना उन्नत नहीं हुआ कि हम ऐसा करना स्वयं बिना किसी दवाव के स्वीकार कर लें । उन की यह दृढ़ धारणा है कि अंतर्जातीय विवाह से जो संतति उत्पन्न होगी वह शारीरिक रूप में आज से अधिक बलवान और पुष्ट होगी । जिस की भारत को इस समय अत्यन्त आवश्यकता है ।

श्री संत राम जी ने जो कार्य आज से पचास वर्ष पहले प्रारम्भ किया था उस की सम्पुष्टि आज देश के सव नेता कर रहे हैं । यह देख कर हार्दिक प्रसन्नता होती है कि इस वर्ष १९६१ में जो सरकार जनगणना करा रही है उस में जाति भेद का कोई स्तम्भ नहीं रक्खा गया है–यह " जाति पाति तोड़क मंडल " की ही एक तरह से विजय समझनी चाहिए–जिस के प्रारम्भ से ही श्री संत राम जी प्रधान रहे हैं । उन्हों ने सचमुच महाकार्य किया है और हिन्दू जाति उन की बहुत ऋणी है । उन को हमारे शत प्रणाम हैं ।

अपरिचित 'परिचित'

श्री भंवरमल सिंघी

मैंने जब से समाज सुधार के क्षेत्र में कार्य करना शुरू किया, तब से ही श्री सन्तर बी० ए० के नाम से परिचित हूं। कुछ नाम ऐसे होते हैं जो व्यक्ति के व्यक्तित्व तक ही सीमि नहीं रह कर विशेष विचार और कार्य के द्योतक हो जाते हैं। ऐसे नाम व्यक्ति के निजत्व समष्टि की व्याप्ति में मिला देते हैं। ऐसे नाम और उनके धारक भाग्यशाली होते हैं। सन्तराम जी का नाम ऐसे ही नामों में से है।

इस नाम को मैं कम से कम पच्चीस–तीस वर्षों से जानता हूं, पर व्यक्ति को आज त भी देखा नहीं है। बात बड़ी अजब लगती है पर है बिलकुल सच। यह नाम जिस काम का इस का असर हमारे चिन्तन और लेखन पर ही नहीं, समाज के विकास की गति पर भी र है। और, नाम के इस काम को मैं इतनी अच्छी तरह जानता हूं कि व्यक्ति को जानने की– उसके दर्शन की–इच्छा तो रही, पर अभी तक उन से साक्षात्कार न होने के बावजूद मैं उ अपरिचित नहीं मानता। उनका नाम एक विचार बन गया है जिस के पीछे प्रेरणा, उत्स निष्ठा, संकल्प और संघर्ष का इतिहास जुड़ा हुआ है। इस इतिहास के धनी को मैंने उस पुस्तकों में लेखों में और पत्र–व्यवहार में इतना जाना है कि जानने को मानो सभी कुछ ज लिया है। यदि श्री सन्तराम जी बिना किसी सूचना या उल्लेख के यों ही मिल जायें तो, दो जगह उनका चित्र देख चुकने के बावजूद, शायद पहचानने में भूल हो जाये, पर उन हस्तलिपि यदि कहीं देख लूं और उस से भी ज्यादा उनकी कोई रचना सामने आ जाये तो जरा भी नहीं होगी। इस प्रकार से अपरिचित सन्तराम जी मेरे लिये घनिष्ठ परिचित

भारतीय समाज की कहानी अत्यन्त दुःख पूर्ण है। धार्मिक सामाजिक रूढ़ियों बेड़ियों ने समाज को हज़ारों वर्षों से बांध रखा है जिस के परिणामस्वरूप उसकी प्रगति र रही, यद्यपि परिवर्तन होता रहा। जो लोग मात्र परिवर्तन को ही प्रगति मान कर हिन्दू समा की गतिशीलता की डींग हांका करते हैं, वे शायद कहें कि समाज ने हमेशा ही परिवर्तन स्वीक किये हैं। वास्तव में हिन्दु समाज में रूढ़िवाद के खिलाफ आवाज़ उठानेवालों को धर्म अ समाज की ओर से लांछना और आघात सहना पड़ा है। सच पूछा जाये तो सच्चे समाज सुधार का माप–दंड यह लांछना और सामाजिक बहिष्कार एवं प्रताड़ना ही रहा है। समा सुधारक को हिन्दु समाज में यही पुरस्कार मिला है और जिस को जितना ज्यादा यह पुरस्का मिला, उसको उतना ही ज्यादा समाज सुधार का श्रेय मिला। श्री सन्तराम जी इ प्रकार से ही समाज द्वारा पुरस्कृत किये गये हैं। उन्होंने अपना समस्त जीवन समा

सुधार के लिए संघर्ष करने में लगा दिया। सामाजिक प्रगति बाधा पहुंचाने वाली हर रूढ़ि के उच्छेद के लिये उन्होने विचार और तर्क के आधार पर निर्भीकता के साथ लिखा, कहा और और संगठित आन्दोलन किया। विशेषतः जातिवाद के विरुद्ध तो उन्होंने एक जबर्दस्त जिहाद ही छेड़ दिया और वह जिहाद आज भी जारी है।

सन्तराम नामक व्यक्ति आज वृद्ध हो गया है, शारीरिक अस्वस्थता ने उसे दुर्बल बना दिया है, आंखो में तकलीफ है परन्तु सन्तराम नामक विचार आज भी युवा है, स्वस्थ है और सबल है। ऐसे विचार वाहक नाम के व्यक्ति को हमारी पीढ़ी और आने वाली पीढ़ियां सदा नमस्कार करती रहेंगी।

रेत और कांटों के पथिकः श्री सन्तराम जी

डा० दुर्गादत्त मेनन

साधु आश्रम होशियारपुर में प्रातः काल के समय एक कृशकाय परन्तु अत्यन्त सौम्‍ व्यक्ति की ओर इंगित करके आचार्य विश्वन्धु जी ने मुझ से पूछा—क्या आप इन परिचित हैं? मैंने सिर से पैर तक एक ही धौतवस्त्र में आवृत उस व्यक्ति की ओर दे कर नकार में उत्तर दिया।

आचार्य संभवतः मेरी अज्ञता पर मुझे कुछ लज्जित सा करते हुए कहने लगे—अ हैं श्री सन्तराम जी, हिन्दी के महान साहित्यकार, मौलिक चिन्तक तथा जात पात मिथ्या आडम्बरों के विध्वंसक।

आचर्य जी से परिचय पाते ही मेरे समक्ष पंजाव की बीसवीं शती के प्रथम त द्वितीय चरण का संपूर्ण संघर्षमय इतिहास चित्रपट के समान प्रतिविम्बित सा हो गया इस चित्रपट की पृष्ठभूमि में मुझे श्री सन्तराम जी का व्यक्तित्व मुस्कराता सा दीख लगा। अतीत की सारी घटनाएं एक एक करके सामने आने लगीं। श्री सन्तराम जी संघर्षमय जीवन की एक करुण रागिनी मुझे झकझोर करने लगी। सहसा भावावेश आकर मेरा मस्तक बापू के कृशकाय कलेवर का प्रतिनिधित्व करने वाले श्री सन्तर जी के चरणों में झुक गया। मैंने उनके चरणों की रज को अपने मस्तक पर लगाया और ऐ करते हुए एक अपार आत्म-परितुष्टि अनुभव की।

श्री सन्तराम जी का जन्म होशियारपुर नगर के समीप पुरानी बस्सी नामक ग्राम में हुआ। शैशवावस्था से ही आपके जीवन की यात्रा रेत और कांटों के साथ अ बढ़ी। होशियारपुर के आस पास या तो रेत के टीले थे, या काण्टेदार झाड़ियां। इन दो से जूझते २ ही आपके जीवन का आरम्भ और विकास हुआ। स्कूल को जाते हुए बाल सन्तराम को पहाड़ी नदियों को पार करते हुए इन दोनों से ही सतत संघर्ष करना पड़ता वही दोनों आपके जीवन के वास्तव में मार्ग दर्शक बने। रेत ने आपको सिखाया कि जीवन जिसे हम मृग-तृष्णा कहते हैं उसे अपने अध्यवसाय से वास्तव में शद्वलमयी भूमि में परिवर्ति किया जा सकता है। सतत संघर्ष और दृढ़ कर्त्तव्यनिष्ठा असंभव को संभव में बदल सकती है आज पुरानी बस्सी के आसपास रेत के टीले नहीं दिखाई देते। श्री सन्तराम जी से प्रेरणा पाक उनके सहयोगियों ने आज उसे एक सुन्दर उद्यान बना दिया है। जिस रेत को आपने अपने ग्रा में सोने में बदला उसी रेत से खेलते २ आप के जीवन का काफिला लाहौर ज

पहुंचा। विडंवना और प्रतारणा ने आपका यहां स्वागत किया। पग पग पर जातपात के कर्णधारों ने आपके व्यक्तित्व को रेत की दीवारों से घेरने का प्रयास किया। परन्तु सन्तराम का युवक हृदय इन रेत की दीवारों से घबराने वाला न था। उसने उन मिथ्या आडंवर-पूर्ण उन दीवारों को जात-पात तोड़क मण्डल की स्थापना कर कुछ ही दिनों में ध्वस्त कर दिया। क्रांति के इस अग्रदूत ने समाज के उन नेताओं को जो बालू के टीले पर खड़े सिंहनाद कर रहे थे बार बार चेतावनी दी। उन्हें युद्ध के लिए ललकारा। उनके दम्भपूर्ण जीवन का इतिवृत्त जनता के समक्ष रख उनकी वास्तविकता का नग्न चित्र अंकित किया।

मानवता में धर्म-जन्म, उच्च, अथवा नीच कुल के नाम से विषमता की दीवार खड़ी करने वालों से आपने कभी जीवन में समझौता नहीं किया। इन रेत के ढेरों को आपने समाज के लिये, राष्ट्र के लिये, नहीं नहीं-अपितु संपूर्ण विश्व के लिए हानि-कारक जानकर उनका आजन्म विरोध किया। यह है आपके जीवन का संघर्षमय पक्ष।

परन्तु इससे भिन्न आपके जीवन का एक और भी चित्र है—एक और भी पक्ष है। वह है कण्टकमय मार्ग। इसमें आपके चारों ओर कांटे ही कांटे दीखते हैं। पर इन कांटों को आपने थोड़े ही समय में सौरभमय प्रसूनों में परिवर्तित कर दिया।

पहले पक्ष में सतत ध्वंस था, चारों ओर संहार ही संहार नज़र आता था। यह आपका ध्वंसकारी ताण्डव नृत्य था। परन्तु इस पक्ष में ध्वंस का स्थान निर्माण ने लिया। श्री सन्तराम जी जिस वर्ण निरपेक्ष समाज की कल्पना कर रहे थे, उस कुछ बौद्धिक आहार भी जुटाना था। केवल ध्वंस के सहारे ही किसी समाज का निर्माण क्या कभी होता है? समाज का नव निर्माण कांटों को हटाकर उनके स्थान पर फूलों के पौधे लगा कर ही किया जा सकता है।

समाज म नवीन विचारधारा की प्रेरणा केवल साहित्य से ही प्राप्त हो सकती है। साहित्य ही समाज के जर्जर कलेवर को झकझोर कर उसमें जीवन का नवीन स्पन्दन पैदा कर सकता है। राष्ट्र के नव निर्माण के लिये, जैसा साहित्य चाहिए, वैसे ही साहित्य का निर्माण आपने आरंभ कर दिया। आपने "इत्सिंग की भारत यात्रा" आदि लिखकर जनता की अतीत के प्रति अवहेलना-पूर्ण भावना को दूर करने का प्रयास किया। नन्हे-मुन्ने भारतकी सन्तान को आदर्श नागरिक कैसे बनाया जा सकता है, उन्हें भविष्य की समस्याओं के साथ जूझने को कैसा पाथेय उपलब्ध होना चाहिए? इस भावना से प्रेरित होकर आपने नवीन प्रकार के बाल साहित्य का सृजन किया। इस प्रकार साहित्यकार के नाते आपने न केवल पंजाब में ही ख्याति प्राप्त की, अपितु अपने सम्पूर्ण भारत के साहित्य स्रष्टाओं में अपना सिक्का जमाया।

आजकल जीवन के अन्तिम चरण में आप अपने ग्राम में रहते हुए 'विश्व-ज्योति' पत्र के द्वारा अपने विचारों को जनता के समक्ष रखने में सतत जागरूक रहते हैं। यह है श्री सन्तराम जी के जीवन की रेत और कांटों वाली कहानी, जो हमें सदा प्रेरणा देती रहेगी।

अध्यक्ष
हिन्दी संस्कृत विभाग
डी. ए वी. कालज जालन्धर।

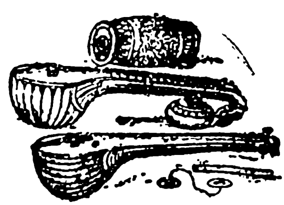

श्री सन्तराम–एक परिचय

श्री सत्यपाल गुप्त

पंजाव के सुविख्यात हिन्दी सेवी सर्वमान्य समाज सुधारक और सर्वतोमुखी प्रतिभा के हिन्दी लेखक श्री संतराम अपने महान कार्य द्वारा इस प्रदेश में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। आप गत लगभग पचास वर्ष से जिस प्रकार तप और त्याग का जीवन व्यतीत कर इस देश की सेवा कर रहे हैं वह इस प्रदेश के निवासियों से छिपा नहीं। आप प्रत्येक कष्ट उठाकर भी समाज सुधार और हिन्दी की सेवा के उस व्रत को पूर्ण कर रहे हैं जिसको पूरा करने का संकल्प आपने अपने जीवन में बहुत पहले लिया था। आज प्रत्येक पंजाव निवासी उनका नाम लेने में गौरव का अनुभव करता है।

इस राष्ट्र-भाषा के अनन्य सेवक का पवित्र जन्म ४ फागुन संवत १९४३ विक्रमी को श्री रामदास जी गोहिल के घर हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती मालिनी देवी थी। आप अपने माता पिता की दूसरी संतान थे और आपके ननिहाल हिमाचल प्रदेश के मण्डी राज्य में पुंग नामक स्थान में थे। आपके पिता अपने नगर के प्रसिद्ध व्यापारी थे। आपको आरम्भ से ही पढ़ाई का वहुत शौक रहा है और इसी कारण अपनी कक्षा में कई बार प्रथम रहने के कारण छात्र-वृत्तियां भी प्राप्त की हैं। आपने वजवाड़ा स्कूल से पांचवी कक्षा पास की और सर्वप्रथम रहने के कारण छात्रवृत्ति मिलनी आरम्भ हो गई। १९०९ में गवर्नमेंट कालिज लाहौर से वी०ए० पास किया और फारसी में प्रथम रहे और छात्रवृत्ति और इनाम प्राप्त किये। वी०ए० पास करने के पश्चात् आपने अमृतसर जिले के एक स्कूल में मुख्याध्यापक के रूप में अपने जीवन का आरम्भ किया। आप कई अन्य स्कूलों के भी अध्यापक समय समय पर रहे। आपने अपने साहित्यिक जीवन का आरम्भ मुन्शी प्रेमचन्द जी, सुदर्शन जी कृष्ण चन्द्र जी की भांति उर्दू से किया। उस समय हिन्दी पंजाब के स्कूलों कालेजों या नगरपालिकाओं की पाठशालाओं में अभी प्रवेश नहीं कर पाई थी और उर्दू का ही वोल वाला था। इसी उर्दू फारसी प्रधान वातावरण मे आपकी शिक्षा हुई। इन भाषाओं के पढ़ने के कारण आपके विचार फारसी और फारस देश के सम्बन्ध में वहुत ऊंचे हो गये थे। आप फारस को संसार का सब से सुन्दर देश और फारसी को सब से सुन्दर भाषा समझने लगे थे।

इन विचारों में परिवर्तन आर्यसमाज और इसके प्रवर्तक महाऋषि दयानन्द जी के कारण हुआ। महात्मा मुन्शी राम (स्वामी श्रद्धानन्द) जी का पत्र "सद्धर्म प्रचारक" जो पहिले उर्दू भाषा में प्रकाशित होता था आप वड़े चाव से पढ़ते थे। कुछ समय के पश्चात् यह

पत्र हिन्दी में प्रकाशित होना आरम्भ हो गया तो उसको पढ़ने के लिये आपने थोड़े ही दिनों में हिन्दी लिखना पढ़ना सीख लिया। महाऋषि दयानन्द जी की भांति आपका भी यह दृढ़ मत था कि हिन्दी ही सारे राष्ट्र को एक सूत्र में बांध सकती है। जिस प्रकार स्वामी जी ने गुजराती होते हुए भी हिन्दी का प्रचार एवं प्रसार किया आपने भी इस भाषा के प्रचार का बीड़ा उठाया। आपने सर्वप्रथम "कादम्बरी' उपन्यास पढ़ा और फिर "सीता वनवास" जिस से आप बहुत प्रभावित हुए। इनमें देश के ऋषि मुनियों, उनके आश्रमों, नदियों, पवित्र तीर्थों और वनोपवनों के वर्णन ने अपने देश के प्रति इनके हृदय में श्रद्धा और अपार प्रेम उत्पन्न कर दिया। आपकी सर्वप्रथम रचना हिन्दी के प्रसिद्ध मासिक "सरस्वती" में श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रोत्साहन से उन द्वारा संशोधित होकर प्रकाशित हुई। फिर तो आपकी रचनाएँ "पांचाल पण्डितों" जालन्धर, "चांद" लाहौर, "सद्धर्म प्रचारक" आदि पत्रों में निकलनी प्रारम्भ हुईं। १९१४ में आपने हिन्दी प्रचार के उद्देश्य से "उषा" पत्र निकाला किन्तु आपके कथनानुसार "उस समय तो पंजाब में "उषा" शब्द का अर्थ भी कोई न समझता था आज कल तो लड़कियों के नाम भी "उषा" रखे जाते हैं"। यह पत्र कुछ समय चला और बन्द हो गया और आपको भारी हानि उठानी पड़ी। १९१९ में कन्या महाविद्यालय की पत्रिका "भारती" के सम्पादक बने और फिर १९३२ में जात पात तोड़क मण्डल के "युगान्तर" के भी आप सम्पादक रहे। आपने 'क्रान्ति' उर्दू का भी सफल ढंग से सम्पादन किया है और आजकल साधु आश्रम में प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका "विश्वज्योति" के सह-सम्पादक के रूप में पत्रकारिता की सेवा कर रहे हैं। आपने विभिन्न पत्रिकाओं द्वारा जहां राष्ट्रभाषा की महान् सेवा की है वहां अपने सुयोग्य पत्रकार होने का भी परिचय दिया है। १९२१ में जब पंजाब विश्व विद्यालय में पहली बार एफ०ए० में हिन्दी को स्थान मिला तो आपको इसका पहला परीक्षक नियुक्त किया गया। आपने १९१२ में "हिन्दी भाषा और नागरी अक्षरों की उन्नति के उपाय" नामक लेख बड़े वैज्ञानिक ढंग से लिखा जिस पर आप को हिन्दी की प्रसिद्ध संस्था नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा 'राधाकृष्ण दास स्मारक रजत पदक' देकर सम्मानित किया गया और फिर "स्कूलों के छात्रों की स्वास्थ्य रक्षा" लेख पर आपको इसी सभा ने छन्नू लाल स्मारक पदक प्रदान किया। संयुक्त पंजाब की सरकार ने आपकी रचना "अलबेरूनी का भारत" पर १२०० और "इत्सिंग की भारत यात्रा" पर ६०० रुपये के पुरस्कार देकर आपकी हिन्दी सेवा की सराहना की। भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने आपकी पुस्तक "अलबेरूनी का भारत" पर १००० रुपये पुरस्कार रूप में दिये। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा ने १५०१ रु० का महात्मा गान्धी पुरस्कार देकर आपकी राष्ट्र भाषा के प्रति की गई सेवाओं की प्रशंसा की। १९४१ में अखिल भारतीय साहित्य सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन के साहित्य परिषद् के आप सभापति पद को सुशोभित कर चुके हैं।

आपकी साहित्यसाधना का मुख्य उद्देश्य समाज सुधार है इसीलिये आपकी कृतियों

में चरित्र निर्माण, नैतिक श्रेष्ठता, छोटी जाति वालों पर श्रेष्ठ जाति वालों के अत्याचारों और समाज की कुरीतियों के विरुद्ध जोरदार शब्दों में आवाज़ उठाई गई है। यदि आपको निम्न वर्ग का प्रबल वक्ता कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति न होगी। आपने जिस सुन्दर ढंग से इनका केस पेश किया है वह इनकी योग्यता और इनके प्रति सच्ची सहृदयता को प्रकट करता है। आप जातपात तोड़कर विवाह करने की दूसरों को ही प्रेरणा नहीं देते बल्कि जब १७ जून १९२४ में आपकी पहली पत्नी श्रीमती गंगा देवी की क्षय रोग से मृत्यु हो गई तो आपने महाराष्ट्र की बाल विधवा श्रीमती सुन्दर बाई प्रधान से जातपात तोड़ कर और प्रान्तीयता के भाव को छोड़ कर स्वयं १९२९ में ४२ वर्ष की आयु में विवाह किया। आपकी पत्नी मराठी और गुजराती की ज्ञाता हैं और इन भाषाओं के हिन्दी में अनुवाद में अपने पति का हाथ बंटाती हैं।

आपने लगभग ६०० लेख विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में लिखे हैं और ७४ के लगभग पुस्तकें हिन्दी साहित्य को दी हैं। यदि आपकी रचनाओं का वर्गीकरण किया जाए तो आप की कृतियां निम्न ४ श्रेणियों में बांटी जा सकती हैं।

पहली श्रेणी में आप द्वारा रचे उस साहित्य को रखा जा सकता है जो आपने देश की कुरीतियों को दूर करने के लिये और समाज सुधार के उद्देश्य स लिखा। इस दिशा में आपने अनेक महापुरुषों की जीवनियां भी लिखीं ताकि उनके जीवन से शिक्षा लेकर लोग अपने बुरे कार्यों को छोड़ कर अच्छे कार्य करने लगें। काम शास्त्र जिसको आजतक अश्लील विषय समझ कर छोड़ दिया जाता था और इस सम्बन्धी कोई अच्छा साहित्य न मिलने के कारण अनेकों परिवार दु:खी थे आपने इस क्षेत्र में जहां बहुत सी प्रसिद्ध और उपयोगी पुस्तकों का अन्य भाषाओं से अनुवाद किया वहां स्वयं भी कई सुन्दर पुस्तकें लिखीं।

दूसरी श्रेणी में आपका बालोपयोगी साहित्य आता है। आपने इस भाषा में बाल साहित्य की कमी को पूरा करने का भरसक प्रयत्न किया है। इस विषय को आय का साधन नहीं समझा जाता और प्राय: लेखक इस विषय पर साहित्य नहीं लिखते। इस क्षेत्र में आपने जहां स्वयं सुन्दर पुस्तकें लिखीं वहां अन्य भाषाओं की अच्छी पुस्तकों का अनुवाद भी किया।

तीसरी श्रेणी में आप द्वारा अन्य भाषा की सुन्दर पुस्तकों के अनुवाद को रखा जा सकता है। इस दिशा में भी आपने महत्वपूर्ण कार्य किया है। आपका यह विचार है कि प्रत्येक विषय पर अन्य भाषाओं का सुन्दर साहित्य हिन्दीमें आना चाहिए ताकि उन पुस्तकों को पढ़ने के लिये हमें वे भाषाएँ न पढ़नी पड़ें। इस दिशा में उद्बोधिनी, (How to attain happiness and achieve success) कर्मयोग, (Practical yoga) योग शास्त्र

सम्बन्धी लाभप्रद पुस्तक) इत्सिग की भारत यात्रा, (भारत के सम्बन्ध में विदेशी पर्यटकों ने जो कुछ अपनी अपनी भाषाओं में लिखा और भारतीय-इतिहास सम्बन्धी जो सामग्री विदेशी भाषाओं में मिलती है उसका अनुवाद) विवाहित प्रेम, (मेरी कामाईकल स्टोपस की पुस्तक "मैरिड-लव" का अनुवाद) । ये पुस्तकें अन्य विदेशी भाषाओं में लाखों की संख्या में खरीदी गईं ।

चौथी श्रेणी में आपकी एक मेव रचना "पंजावी गीत" को रखा जा सकता है । यह पंजाव के विभिन्न जिलों में प्रचलित लोक-गीतों का संग्रह है जो विभिन्न अवसरों जैसे सुहाग, मिलनी, सुहाग पिटारी, वेदी में वैठने के समय, पुत्र जन्म आदि पर गाये जाते हैं ।

आपकी दृष्टि से आपकी सर्वश्रेष्ठ रचना "हमारा समाज" है । इस पुस्तक को हम इनकी विचार धारा की प्रतिनिधि पुस्तक कह सकते हैं । जिसमें वेद, स्मृति, पुराण आदि ग्रन्थों के हवाले से जाति भेद की वुराईयां प्रकट की गई हैं । आपका यह मत है कि जव तक इस देश में जातपात कायम रहेगी यह राष्ट्र उन्नति नहीं कर सकता । इस पुस्तक को आप जातपात के विरुद्ध एक वम्ब समझते हैं ।

इस महान समाजसेवी, साहित्य साधक और उच्चकोटि के निस्वार्थ भाव से देश, समाज और साहित्य की सेवा करने वाले महानुभाव से अभी यह प्रदेश वहुत सी आशाएं रखता है । आशा है कि अभी चिरकाल तक ये पंजाव के साहित्य और समाज सेवियों का मार्ग दर्शन करते रहेंगे ।

हिन्दी विभाग,
पटियाला ।

हिन्दी के प्रवीण लेखक और निर्भीक सेवक: श्री सन्त राम

ब्रह्मदत्त वेदतीर्थ

लाहौर में ही पहले-पहल श्री सन्तराम जी के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, वैसे तो वचपन से ही उनके लेख आदि पढ़ता रहा था। भारत-विभाजन के पश्चात् वे भी अपने जन्म स्थान, पुरानी बसी, में आ गए और संयोगवश, यहीं विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान भी लाहौर से स्थानान्तरित होकर होशियारपुर के धनीराम भल्ला साधु आश्रम में आ गया। संस्थान की मुख पत्रिका 'विश्वज्योति' का प्रारम्भ से ही एक कार्यकर्त्ता होने के कारण मुझे श्री सन्तराम जी के निकट सम्पर्क में आने का काफी अवसर मिला, क्योंकि वे भी प्रथमांक (मार्च १९५२) से ही इसके अवैतनिक सहसम्पादक हैं।

अपने जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में श्री सन्तराम जी ने तरह तरह के पापड़ वेले और आखिरकार १९२४ के दिसम्बर से स्वतन्त्र लखन् वृत्ति में लग गए और आज भी संलग्न हैं। इस सुदीर्घ काल में आपने लगभग ८० पुस्तकें लिखीं, विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के लिये लेख लिखे और अनेक पत्र पत्रिकाओं का प्रकाशन एवं सम्पादन किया। आपके विशाल साहित्य को मोटे तौर पर चार भागों में बांटा जा सकता है —

१—अनुवाद, २—पाठ्य पुस्तकें, ३—महापुरुषों की जीवनियां एवं अन्य उद्बोधक प्रेरक साहित्य, और ४–विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेख तथा संपादकीय टिप्पणियां आदि। इनमें से तृतीय एवं चतुर्थ के अधिकांश में जाति-प्रथा के समूल उन्मूलन की ही चेष्टा निहित है। "हमारा समाज" आदि कतिपय विशिष्ट पुस्तकें तो उन्होंन लिखी ही इसी सद्भाव से हैं। जातपात तोड़क मण्डल के पत्रों—"क्रान्ति" और युगान्तर" का तो प्रकाशन ही इसी निमित्त हुआ था। आज तो "सन्तराम बी०ए० नाम और जातपात तोड़क आन्दोलन" पर्यायवाची बन गए हैं। यदि यह कहें कि सन्तराम जी का समस्त जीवन ही जातिभेद को मिटाने का एक इतिहास है, तो अत्युक्ति नहीं होगी।

आज ७४ वर्ष की अवस्था होने पर भी, भारत के चाहे किसी कोने में जाति-भेद तोड़ कर होने वाले विवाह का इन्हें निमन्त्रण आ जाए तो ये लाख कष्ट उठा कर भी उसमें सम्मिलित होने जायेंगे या ऐसा समाचार सुनकर गद्‌गद् हो उठेंगे और सम्बन्धित व्यक्तियों को, भले ही वे परिचित हों या अपरिचित, शुभकामना संदेश भेजेंगे। भारत से जातिवाद के राजरोग को मिटाना ही उनके जीवन का प्रधान मिशन रहा है।

सन् १६१३ की वात है। श्री सन्तराम जी को भ्रमण का व्यसन तो प्रारम्भ से ही रहा है। उन दिनों ये रामपुर वुशहर राज्य में सतलुज नदी के किनारे वंगतू नाम पड़ाव में ठहरे हुए थे। वहीं गढ़वाल के इनके ग्रोवरसियर मित्र श्री तोताराम थपल्याल सरकारी विश्राम गृह में रहा करते थे। एक दिन वहां दो अंग्रेज़ पादरी श्री होवार्ड और श्री हायलैंड पर्यटन करते हुए पहुंचे। शाम का समय था, दुकानें वन्द हो चुकी थीं, अतः उन्होंने आटा-सामान लिया। उन्होंने इनको भी भोजन के लिये आमन्त्रित किया, पर ये चुप रहे। लेकिन सन् १६३२ तक श्री संतराम जी जात पात के कितने कट्टर विरोधी हो चुके थे, यह इससे स्पष्ट है कि इनके गांव (पुरानी वसी) में ही उस वर्ष पठानों के यहां एक विवाह था। इनके मित्र श्री शेरखां अपने घर से कुछ मिठाई लाए और छिपा कर देने लगे। तव आपने स्पष्ट कहा—मैं छिपा कर नहीं, सवके सामने खाना चाहता हूँ।

"कहना सो करना" इनके जीवन का मूल मन्त्र है और इसी लिये ये पठान की मिठाई खाने से चूके नहीं। सारे गांव में इससे शोर मचना स्वाभाविक ही था। इसके कुछ ही समय वाद की घटना है। इन से गांव में मिलने के लिये दो मित्र श्री ईश्वरदास जी सव-जज और श्री हरनाम दास पहुंचे। वे दोनों जाति से अछूत थे। इन्होंने उनको अपने घर के कुएँ पर चढ़ाया और चौके में वैठा कर भोजन कराया। इससे तो गांव में और भी हो हल्ला मच गया। यहां तक कि हिन्दू नौकरों ने ही नहीं, मुसलमान नौकरों ने भी इनके घर का वहिष्कार कर दिया। ये अपने संकल्प पर दृढ़ रहे। हिन्दु स्त्रियां जव इस वात पर गालियां देतीं तो इन्हें उनकी अज्ञता पर हंसी आया करती। इनका तो मत है:

न डर वादे मुखालिफ से तू डर अयि उक्काव।
यह तो चलती है तुझे ऊंचा उठाने के लिये॥

—विरोध की इन्होंने पर्वाह न की और परिणामतः गांव से, कुछ वर्षों में ही, छूत-छात वहुत अंशों में निकल गयी।

सुधार अपने घर से शुरु होता है और इसके आप पक्षपाती हैं। इनकी पहली पत्नी-श्रीमती गंगादेवी—विल्कुल निरक्षर थीं। वे थीं भी अपने माता पिता की एकलौती सन्तान। ये उस समय कालेज में पढ़ रहे थे। अपनी पढ़ाई समाप्त करके अपनी अर्धांगिनी को भी पढ़ाई के लिये इन्होंने प्रेरित किया। उन दिनों पंजाव में स्त्रियों को पढ़ाना वुरा समझा जाता था और गांव में तो ऐसी स्त्रियों को 'मेम' कहा जाता था। फिर इनकी पत्नी तो घूंघट भी करती थी। इन्होंने घूंघट छुड़ा दिया और मनोयोग से हिन्दी पढ़ाना शुरूकर दिया। फल यह हुआ कि वह हिन्दी पढ़ गई और अच्छी पुस्तकें पढ़ने तथा सुन्दर पत्र लिखने का उन्हें अभ्यास हो गया। अपने प्रत्येक कार्य में ये कर्मठ रहे हैं। ऋषि दयानन्द, महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) और आर्य-समाज का इनके जीवन पर वहुत प्रभाव पड़ा है।

२६ दिसम्बर १६४१ को अवोहर के हिन्दी साहित्य सम्मेलन में अभिभाषण करते हुए श्री सन्तराम जी ने स्पष्ट कहा था—

"साहित्यक का जो अर्थ आजकल लिया जाता है, उस अर्थ में मैं साहित्यिक नहीं हूँ। मेरा कार्य-क्षेत्र अधिकतर समाज-सुधार है। मैंने स्कूल-कालेज में उर्दू फारसी पढ़ी थी। पीछे से जव राष्ट्रीय भावना जागृत हुई तो हिन्दी सीखी। कहने का अभिप्राय यह कि मैंने ब्रज-माधुरी का रसास्वादन करने अथवा सूर या तुलसी की, या बिहारी और मतिराम की कविता का आनन्द लूटने के लिये हिन्दी नहीं सीखी। इस विषय में ऋषि दयानन्द से प्रेरणा मिली है। मेरी धारणा है कि हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है। यह समूचे राष्ट्र को एकता के सूत्र बमें बांध सकती है। यह हमें भारत-भूमि से प्रेम करना सिखाती है। आज २०– २२ वर्ष के पश्चात् भी इनका मत हिन्दी के बारे में वही है। राजर्षि टण्डन जी की ही भांति ये हिन्दी को राष्ट्र की एकता का प्रतीक मानते हैं।

राष्ट्र की ही एकता के लिये श्री सन्तराम जी दूसरा आवश्यक और अपरिहार्य कदम मानते हैं देश से जातपात का भेद भगाना और सब को समान समझना। आप मानवता को ही सवसे वड़ा धर्म मानते हैं। और इनकी मान्यता यही है :—

"खुदा के बन्दे तो हैं हज़ारों, बनों में फिरते हैं मारे मारे।
बनूंगा वन्दा मैं उसका जिसको, खुदा के बन्दों से प्यार होगा।"

ये तो कहा करते हैं —"मैं ऐसा जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ कि जब मैं इस संसार से प्रयाण करूँ तो, यदि कोई परमेश्वर है, उससे कह सकूं कि लेखा कर लीजिए, मेरा कुछ निकलता है तो मुझे दे दीजिए और आप का कुछ निकलता है तो आप ले लीजिए। मुझे परमेश्वर के सामने डर के मारे नाक रगड़ने की आवश्यकता न पड़े।"

जीवन में यह बेफिक्री भी कमाल की चीज़ है, जो इन्हें अपने मिशन में लग जाने के कारण प्राप्त हुई। इनके मित्र श्री भूमानन्द जी ने तो १६१४ में ही जात-पात तोड़ कर विवाह किया था। इस प्रकार कमालियानिवासी श्री कर्मचन्द्र नारंग का नाम ये विशेष रूप से उल्लेख करते रहते हैं, जिन्होंने अपनी पुत्री सुश्री पार्वती देवी ही नहीं, प्रत्युत प्रेमलता का विवाह भी जात से बाहर किया था। श्री सन्तराम जी ने भाई परमानन्द जी का वच्छोवाली आर्यसमाज (लाहौर) में नवम्बर १६२२ में एक भाषण सुना था, जिसमें उन्होंने जाति-भेद को हिन्दू समाज के लिये बड़ा अनिष्टकारी वतलाया था।

वस, १० मार्गशीर्ष संवत् १६१६ को मध्याह्नसमय न्यायमूर्त्ति भाई परमानन्द जी के निवास स्थान पर ही श्री सन्तराम जी एवं उनके से विचार वाले बीस-बाईस स्त्री-पुरुष एकत्र हुए और "जात-पात तोड़क मण्डल" की स्थापना की गई। भाई जी मण्डल के प्रथम प्रधान चुने गये और श्री सन्तराम जो उसके मन्त्री। धीरे २ मण्डल के कार्य का विस्तार होने लगा तथा इनकी प्रवृत्तियां तथा व्यस्तता भी बढ़ती गई। समाचारपत्रों में लेख लिखे गये

और "जात-पात तोड़क" नाम का एक मासिक पत्र भी हिन्दी में निकाला गया। इसका प्रथमांक (जो श्री सन्तराम जी ने ही सम्पादित किया था) आषाढ़ १९८० विक्रमी में निकला था यह सितम्बर १९२४ तक निकलता रहा था। अपनी पत्नी की रुग्णता के कारण कुछ समय श्री सन्तराम जी लाहौर से बाहर रहे, अतः उनकी अनुपस्थिति में श्री परमानन्द जी बी०ए० के संपादन में वह पत्र निकला। वैसे १९२४ का अन्तिम अंक श्री सन्तराम जी द्वारा ही संपादित हुआ था ।

जात पात तोड़क मण्डल की ओर से जनवरी, १९२७ में जात पात तोड़क नाम की एक मासिक पत्रिका उर्दू में निकली, जिसका नाम जनवरी १९२८ से बदल कर, "क्रांति" हो गया था। इसके प्रधान संपादक श्री सन्तराम जी ही थे। यह पत्रिका खूब लोकप्रिय हुई। रायल अठपेजी साइज़ के ६४ पृष्ठ इसमें रहते थे। "क्रांति" अगस्त १९४७ को अन्तिम अंक निकाल कर देश के विभाजन के कारण बन्द हो गई। इसके विशेषांकों की बड़ी धूम मची थी और नेहरु नंबर, बच्चा नम्बर, नारी नम्बर और महापुरुषांक बहुत ही प्रसिद्ध हुए। श्री सन्तराम जी ने जात पात विरोधी लेख ही नहीं लिखे, पत्रिकाएं ही नहीं निकालीं, अपितु सर्वोपरि सक्रिय पग यह भी उठाया कि अनेक युवक-युवतियों को जाति से बाहर विवाह करने की प्रेरणा दी और आज भी देते रहते हैं। अपना या अपनी सन्तान का विवाह जात पात तोड़ कर करने वालों की एक सूची भी इनके पास है।

१५ अगस्त सन् १९४७ में पाकिस्तान बन जाने से श्री सन्तराम को लाहौर छोड़ कर अपने गांव पुरानी बसी आ जाना पड़ा और मंडल का अधिकाश संगठन अस्त-व्यस्त हो गया फिर भी इन्होंने वह लो जलती रखी है तथा जात पात के खण्डन में कई पुस्तकें लिखीं :—

१—जात-पात तोड़ दो-क्यों ? २—युग धर्म सन् १९५३,३ हिन्दुओ संभलो १९५३ ४—हमारा निराकार शत्रु १९५४, ५— हमारी यह जात पात, १९५६, ६—वास्तविक उपाधि क्या ? १९५६,७—कौन जात १९५७,८— जात पात की समस्या और उस कास माधान १९५७ ९—भारत का भविष्य १९५८,१०—जात पात के सम्बन्ध में कुछ कड़वे—कसैले अनुभव १९५८। ११—अन्तर जातीय विवाह ही क्यों ? १९५९, १२—भक्ति लीलामृत १९६०, आदि।

श्री सन्त राम जी के अपने ही परिवार में भाई—भतीजों और भतीजियों ने जात—पात तोड़ कर विवाह किये हैं। इन्होंने अपनी एक मात्र पुत्री गार्गी देवी का विवाह भी जात पात तोड़ कर किया है। इन्हें श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार (सम्पादक "आज कल", नई दिल्ली) ने अपने पत्र में ८ फरवरी, १९६१ को लिखा था—जात पात तोड़क आन्दोलन तो स्वतन्त्र भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का एक आवश्यक अंग है। मण्डल का विरोध हुआ, पर कभी घबराए नहीं। इन्हें प्रसनता होती है कि राष्ट्र के इस आन्दोलन को आगे बढ़ाने में इन का महान

सहयोग रहा है और ये अब भी उस में दत्तचित हैं। श्री सन्तराम जी ७४ वर्ष की अवस्था में भी तरुणाई में हैं, क्यों कि इनकी जिन्दा दिली ज्यों की त्यों हैं।

आप की हिन्दी सेवा के लिए "सरस्वती" सम्पादक स्व०श्री देवी दत्त शुक्ल का दिनांक १२–११–१९४० का, इन को लिखा गया एक पत्र ही सब से बड़ा प्रमाण है :।

"विश्वास रखिए, आप का चित्र "सरस्वती" में छापने से मुझे व्यक्तिगत प्रसन्नता होगी। आप हिन्दी के प्रवीण लेखक ही नहीं, उस के निर्भीक सेवक भी हैं, हिन्दी में इस समय जो दो चार अग्रगण्य लेखक हैं, उन में एक आप भी हैं। गत बीस वर्षों से मैं आप की रचनाएं पढ़ रहा हूं और आप से भली प्रकार परिचित हूं। आपने राष्ट्र भाषा का सदैव गौरव बढ़ाया है।"

साधु आश्रम होशियारपुर।

श्री सन्त राम बच्चों के लेखक

श्री हरी चन्द पाराशर

श्री सन्त राम जी विषय और शैली दोनों दृष्टिकोणों से द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मक ढंग के लेखक हैं। उनकी समग्र साहित्य साधना चरित्र निर्माण के माध्यम से समाज सुधार के लिए है। इसी दिशा की एक कड़ी उनका बालसाहित्य है। बालसाहित्य से हमारा अभिप्राय उन रचनाओं से है जो छः से बारह वर्ष के बच्चों की मानसिक आवश्यकताओं को दृष्टि में रखकर लिखी गई हैं। लेखक की ऐसी रचनाएं एक दर्जन से अधिक हैं, जोकि उनकी समग्र साहित्यिक साधना का लगभग छटा हिस्सा है। बालसाहित्य सम्बन्धी रचनाएं मौलिक भी हैं और अनूदित भी। अनुवाद श्रीमती ताराबाई मोड़क आदि ऐसे महानुभावों की रचनाओं के हैं, जिन्हों ने बाल–शिक्षा में विशेष रचनात्मक कार्य किया है। लेखक ने स्वयं पैंसठ वर्ष की अवस्था लांघ कर बालसाहित्य की सृजना आरंभ की, परन्तु फिर भी आश्चर्य की बात है कि बालमनोविज्ञान के अनुसार उन्हों ने अपने अनुभव को छोटे बच्चों के लिए एकेहरे ढंग में लिखा है।

बच्चों के लिए कहानी बनाना और कहानी कहना एक कला है। कला भी ऐसी जो साहित्यक शैली और बाल–मनोविज्ञान की अपेक्षाओं, दोनों तत्वों की बराबर की मांग करती है। इन दोनों तत्वों का संयोग बहुत कम मिलता है, सम्भवतः यही कारण है कि बालशिक्षा में अधिक उन्नत कुछ प्रगतिशील योरोपीय और अमेरिकी देशों में बच्चों को कहानी सुनाने वाले विशेषज्ञों की बहुत कदर होती है। बच्चों के लिए कहानी बनाने की कला श्री सन्तराम जी में कमाल की हैं। इस बात का उदाहरण 'चिड़िया घर' शीर्षक पुस्तक की कहानियां हैं। ये कहानिय छः सात साल के बच्चों के लिए लिखी गई हैं, तब बच्चा कल्पनाशील होता है, उसकी जिज्ञास कौतूहलमयी होती है, पशु पक्षियों की कहानियां उसे अच्छी लगती हैं। 'चिड़ियाघर' शीर्षक पुस्तक की कहानियों की त्वरित गति उक्त अवस्था के बच्चों की कल्पना और कौतूहल को झकझोरने वाली है जिस से उनकी मानसिक त्वरा जागृत होकर सन्तुष्ट होती है, जाग्रण और और शमन का यह 'कैथारसिस' लेखक के समग्र बाल साहित्य की स्पष्ट विशेषता है। "जादू का खेल" शीर्षक पुस्तक की कहानियों में परिस्थिति का संदर्भ अधिक है परन्तु कल्पनामयता भी कम नहीं, ये कहानियां आठ वर्ष के बच्चों की बाल मनोवैज्ञानिक अपेक्षाओं क अनुकूल हैं जब बच्चा "मानसिक त्वरा से हटकर शारीरिक यथार्थ की ओर आता है। 'शारीरिक यथार्थ' के उदय हो जाने पर बच्चा व्यक्तिपरक कहानियां सुनने में रुचि लेने लगता है, इस अवस्था के बच्चों के लिए 'मां के लाल' शीर्षक पुस्तक की कहानियां लिखी गई हैं। बचपन का यह दूसरा उत्थान चरित्र निर्माण के लिए चेतनमन से प्रभाव ग्रहण करने लगता है, निजत्व का भाव (मास्टर सैंटीमैंट) जोर पकड़ने लगता है, चरित्र निर्माण की इस अवस्था में आदर्श

महानुभावों की जीवनियां बच्चे के चेतनमन के लिए नमूने का काम देती हैं। उक्त पुस्तक की सभी कहानियां बालमनोविज्ञान की इस अपेक्षा की पूर्ति करने वाली हैं।

'शारीरिक यथार्थ' के विकास के साथ साथ बच्चों में 'युयुत्सा' (पुगनेसिटी) जागृत होती है। युयुत्सा प्रवृति के उन्नयन के लिए 'बालचर' (स्काउट) अंदोलन संगठित किया गया है। इस अवस्था के बच्चों के लिए लेखक द्वारा अनूदित पुस्तकें "स्काउट बच्चों की कहानियां" और "मन बहलाव की कहानियां" उल्लेखनीय हैं, पहली पुस्तक का मूल लेखक गजानन महादेव है और दूसरी का मूल लेखक यालचन्द्र महादेव। ये दोनों पुस्तकें मराठी से अनूदित हैं, पहली में बच्चों के चेतनमन का संस्कार करने वाली कहानियां हैं, विशेषता यह है कि इस पुस्तक की सभी कहानियों को क्रमबद्ध करके "जीवन की निरन्तरता" वाला आभास दिया गया है। दूसरी में बच्चों के अवचेतन मन का परिष्कार करने वाली कहानियां हैं। 'नदी की कहानी', 'जादू की नाव', 'महाजनों की कहानियां', 'दादी की कहानियां', 'सुनहली कहानियां' भी अनूदित पुस्तकें हैं। लेखक ने अनुवाद अधिकांशत: मराठी से किए हैं। अनुवाद स्वयमेव मानसिक और बौद्धिक यातायात का एक प्रमुख साधन है, और राष्ट्र भाषा हिन्दी के लिए यह और भी आवश्यक एवं अनिवार्य है क्योंकि अनुवाद द्वारा ही यह विभिन्न तथा विविध प्रान्तीय प्रतिभा से उचित और अपेक्षित सहायता ले सकती है। लेखक ने प्रान्तीय भाषाओं से अनुवाद का कार्य आरंभ करके बच्चों के बाल–मस्तिष्क को अन्तर्प्रान्तीय बनाने का स्तुत्य प्रयत्न किया है।

मौलिक और अनूदित दोनों प्रकार की रचनाओं को समुचे रूप में देखने से श्री सन्तराम रचित बालसाहित्य की विशेषताएं और उपलब्धियां ये है :—

(१) उन्होंने पंजाब प्रान्त में प्रचलित लोक कथाओं को बालोपयोगी कहानियों का रूप दिया है और ऐसा करते समय लोक कथा में प्रचलित अनावश्यक कल्पना के अतिरेक को काट छांट दिया है। उदाहरणतया 'पंजाब की कहानियां तीन भागों में।

(२) पंच तंत्र की कथाओं को छः आठ वर्ष के बच्चों के लिए उपयोगी साहित्यिक ढंग में लिखा है।

(३) छः से बारह वर्ष के बच्चों की विभिन्न मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं के अनुसार उन्होंने विविध बाल साहित्य की रचना की है। उनकी रचनाओं में पशु पक्षियों सम्बन्धी और अन्य कल्पनाशील जादू की कहानियां भी हैं और व्यक्तिपरक ऐतिहासिक कहानियां भी। परन्तु साहित्य की रूपगत् दृष्टि से उन के बालसाहित्य में 'कहानी' ही प्रमुख है। बच्चों के चरित्रनिर्माण में सहायक हर बात को उन्हों ने कहानी का

सन् १९१३ की बात है। श्री सन्तराम जी को भ्रमण का व्यसन तो प्रारम्भ से ही रहा है । उन दिनों ये रामपुर बुशहर राज्य में सतलुज नदी के किनारे बंगतू नाम पड़ाव में ठहरे हुए थे। वहीं गढ़वाल के इनके ओवरसियर मित्र श्री तोताराम थपल्याल सरकारी विश्राम गृह में रहा करते थे। एक दिन वहां दो अंग्रेज़ पादरी श्री होवार्ड और श्री हायलैंड पर्यटन करते हुए पहुंचे। शाम का समय था, दुकानें बन्द हो चुकी थीं, अतः उन्होंने आटा-सामान लिया। उन्होंने इनको भी भोजन के लिये आमन्त्रित किया, पर ये चुप रहे। लेकिन सन् १९३२ तक श्री संतराम जी जात पात के कितने कट्टर विरोधी हो चुके थे, यह इससे स्पष्ट है कि इनके गांव (पुरानी बसी) में ही उस वर्ष पठानों के यहां एक विवाह था। इनके मित्र श्री शेरखां अपने घर से कुछ मिठाई लाए और छिपा कर देने लगे। तब आपने स्पष्ट कहा—मैं छिपा कर नहीं, सबके सामने खाना चाहता हूँ।

"कहना सो करना" इनके जीवन का मूल मन्त्र है और इसी लिये ये पठान की मिठाई खाने से चूके नहीं। सारे गांव में इससे शोर मचना स्वाभाविक ही था। इसके कुछ ही समय बाद की घटना है। इन से गांव में मिलने के लिये दो मित्र श्री ईश्वरदास जी सब-जज और श्री हरनाम दास पहुंचे। वे दोनों जाति से अछूत थे। इन्होंने उनको अपने घर के कुएँ पर चढ़ाया और चौके में बैठा कर भोजन कराया। इससे तो गांव में और भी हो हल्ला मच गया। यहां तक कि हिन्दू नौकरों ने ही नहीं, मुसलमान नौकरों ने भी इनके घर का बहिष्कार कर दिया। ये अपने संकल्प पर दृढ़ रहे। हिन्दु स्त्रियां जब इस बात पर गालियां देतीं तो इन्हें उनकी अज्ञता पर हंसी आया करती। इनका तो मत है:

न डर बादे मुखालिफ से तू डर अयि उक्काब।
यह तो चलती है तुझे ऊंचा उठाने के लिये॥

—विरोध की इन्होंने पर्वाह न की और परिणामतः गांव से, कुछ वर्षों में ही, छत-छात बहुत अंशों में निकल गयी।

सुधार अपने घर से शुरु होता है और इसके आप पक्षपाती हैं। इनकी पहली पत्नी-श्रीमती गंगादेवी—बिल्कुल निरक्षर थीं। वे थीं भी अपने माता पिता की एकलौती सन्तान। ये उस समय कालेज में पढ़ रहे थे। अपनी पढ़ाई समाप्त करके अपनी अर्धांगिनी को भी पढ़ाई के लिये इन्होंने प्रेरित किया। उन दिनों पंजाब में स्त्रियों को पढ़ाना बुरा समझा जाता था और गांव में तो ऐसी स्त्रियों को 'मेम' कहा जाता था। फिर इनकी पत्नी तो घूंघट भी करती थी। इन्होंने घूंघट छुड़ा दिया और मनोयोग से हिन्दी पढ़ाना शुरूकर दिया। फल यह हुआ कि वह हिन्दी पढ़ गई और अच्छी पुस्तकें पढ़ने तथा सुन्दर पत्र लिखने का उन्हें अभ्यास हो गया। अपने प्रत्येक कार्य में ये कर्मठ रहे हैं। ऋषि दयानन्द, महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) और आर्य-समाज का इनके जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ा है।

२६ दिसम्बर १६४१ को अबोहर के हिन्दी साहित्य सम्मेलन में अभिभाषण करते हुए श्री सन्तराम जी ने स्पष्ट कहा था—

"साहित्यक का जो अर्थ आजकल लिया जाता है, उस अर्थ में मैं साहित्यिक नहीं हूँ। मेरा कार्य-क्षेत्र अधिकतर समाज-सुधार है। मैंने स्कूल-कालेज में उर्दू फारसी पढ़ी थी। पीछे से जब राष्ट्रीय भावना जागृत हुई तो हिन्दी सीखी। कहने का अभिप्राय यह कि मैंने ब्रज-माधुरी का रसास्वादन करने अथवा सूर या तुलसी की, या बिहारी और मतिराम की कविता का आनन्द लूटने के लिये हिन्दी नहीं सीखी। इस विषय में ऋषि दयानन्द से प्रेरणा मिली है। मेरी धारणा है कि हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है। यह समूचे राष्ट्र को एकता के सूत्र बमें बांध सकती है। यह हमें भारत-भूमि से प्रेम करना सिखाती है। आज २०– २२ वर्ष के पश्चात् भी इनका मत हिन्दी के बारे में वही है। रार्जषि टण्डन जी की ही भांति ये हिन्दी को राष्ट्र की एकता का प्रतीक मानते हैं।

राष्ट्र की ही एकता के लिये श्री सन्तराम जी दूसरा आवश्यक और अपरिहार्य कदम मानते हैं देश से जातपात का भेद भगाना और सब को समान समझना। आप मानवता को ही सबसे बड़ा धर्म मानते हैं। और इनकी मान्यता यही है :—

"खुदा के बन्दे तो हैं हजारों, बनों में फिरते हैं मारे मारे।
बनूंगा बन्दा मैं उसका जिसको, खुदा के बन्दों से प्यार होगा।"

ये तो कहा करते हैं —"मैं ऐसा जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ कि जब मैं इस संसार से प्रयाण करूँ तो, यदि कोई परमेश्वर है, उससे कह सकूं कि लेखा कर लीजिए, मेरा कुछ निकलता है तो मुझे दे दीजिए और आप का कुछ निकलता है तो आप ले लीजिए। मुझे परमेश्वर के सामने डर के मारे नाक रगड़ने की आवश्यकता न पड़े।"

जीवन में यह बेफिक्री भी कमाल की चीज़ है, जो इन्हें अपने मिशन में लग जाने के कारण प्राप्त हुई। इनके मित्र श्री भूमानन्द जी ने तो १६१४ में ही जात-पात तोड़ कर विवाह किया था। इस प्रकार कमालियानिवासी श्री कर्मचन्द्र नारंग का नाम ये विशेष रूप से उल्लेख करते रहते हैं, जिन्होंने अपनी पुत्री सुश्री पार्वती देवी ही नहीं, प्रत्युत प्रेमलता का विवाह भी जात से बाहर किया था। श्री सन्तराम जी ने भाई परमानन्द जी का बच्छोवाली आर्यसमाज (लाहौर) में नवम्बर १६२२ में एक भाषण सुना था, जिसमें उन्होंने जाति-भेद को हिन्दू समाज के लिये बड़ा अनिष्टकारी बतलाया था।

बस, १० मार्गशीर्ष संवत् १६१६ को मध्याह्नसमय न्यायमूर्त्ति भाई परमानन्द जी के निवास स्थान पर ही श्री सन्तराम जी एवं उनके से विचार वाले बीस-बाईस स्त्री-पुरुष एकत्र हुए और "जात-पात तोड़क मण्डल" की स्थापना की गई। भाई जी मण्डल के प्रथम प्रधान चुने गये और श्री सन्तराम जो उसके मन्त्री। धीरे २ मण्डल के कार्य का विस्तार होने लगा तथा इनकी प्रवृत्तियां तथा व्यस्तता भी बढ़ती गई। समाचारपत्रों में लेख लिखे गये

और "जात-पात तोड़क" नाम का एक मासिक पत्र भी हिन्दी में निकाला गया। इसका प्रथमांक (जो श्री सन्तराम जी ने ही सम्पादित किया था) आषाढ़ १९८० विक्रमी में निकला था। यह सितम्बर १९२४ तक निकलता रहा था। अपनी पत्नी की रुग्णता के कारण कुछ समय श्री सन्तराम जी लाहौर से बाहर रहे, अतः उनकी अनुपस्थिति में श्री परमानन्द जी बी०ए० के संपादन में वह पत्र निकला। वैसे १९२४ का अन्तिम अंक श्री सन्तराम जी द्वारा ही संपादित हुआ था।

जात पात तोड़क मण्डल की ओर से जनवरी, १९२७ में जात पात तोड़क नाम की एक मासिक पत्रिका उर्दू में निकली, जिसका नाम जनवरी १९२८ से बदल कर, "क्रांति" हो गया था। इसके प्रधान संपादक श्री सन्तराम जी ही थे। यह पत्रिका खूब लोकप्रिय हुई। रायल अठपेजी साइज़ के ६४ पृष्ठ इसमें रहते थे। "क्रांति" अगस्त १९४७ का अन्तिम अंक निकाल कर देश के विभाजन के कारण बन्द हो गई। इसके विशेषांकों की बड़ी धूम मची थी और देहात नंबर, बच्चा नम्बर, नारी नम्बर और महापुरुषांक बहुत ही प्रसिद्ध हुए। श्री सन्तराम जी ने जात पात विरोधी लेख ही नहीं लिखे, पत्रिकाए ही हीं निकालीं; अपितु सर्वोपरि सक्रिय पग यह भी उठाया कि अनेक युवक-युवतियों को जाति से बाहर विवाह करने की प्रेरणा दी और आज भी देते रहते हैं। अपना या अपनी सन्तान का विवाह जात पात तोड़ कर करने वालों की एक सूची भी इनके पास है।

१५ अगस्त सन् १९४७ में पाकिस्तान बन जाने से श्री सत्तराम को लाहौर छोड़ कर अपने गांव पुरानी बसी आ जाना पड़ा और मंडल का अधिकाश संगठन अस्त–व्यस्त हो गया, फिर भी इन्होंने वह लो जलती रखी है तथा जात पात के खण्डन में कई पुस्तकें लिखीं :—

१—जात–पात तोड़ दो–क्यों? २–युग धर्म सन् १९५३, ३ हिन्दुओ संभलो १९५३, ४–हमारा निराकार शत्रु १९५४, ५– हमारी यह जात पात, १९५६, ६–वास्तविक उपाधि क्या? १९५६, ७–कौन जात १९५७, ८– जात पात की समस्या और उस कासमाधान १९५७, ९–भारत का भविष्य १९५८, १०–जात पात के सम्बन्ध में कुछ कड़वे–कसैले अनुभव १९५८), ११–अन्तर जातीय विवाह ही क्यों? १९५९, १२–भक्ति लीलामृत १९६०, आदि।

श्री सन्त राम जी के अपने ही परिवार में भाई–भतीजों और भतीजियों ने जात–पात तोड़ कर विवाह किये हैं। इन्होंने अपनी एक मात्र पुत्री गार्गी देवी का विवाह भी जात पात तोड़ कर किया है। इन्हें श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार (सम्पादक "आज कल", नई दिल्ली) ने अपने पत्र में ८ फरवरी, १९६१ को लिखा था–जात पात तोड़क आन्दोलन तो स्वतन्त्र भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का एक आवश्यक अंग है। मण्डल का विरोध हुआ, पर कभी घबराए नहीं। इन्हें प्रसनता होती है कि राष्ट्र के इस आन्दोलन को आगे बढ़ाने में इन का महान

सहयोग रहा है और ये अब भी उस में दत्तचित हैं। श्री सन्तराम जी ७४ वर्ष की अवस्था में भी तरुणाई में हैं, क्यों कि इनकी जिन्दा दिली ज्यों की त्यों हैं।

आप की हिन्दी सेवा के लिए "सरस्वती" सम्पादक स्व०श्री देवी दत्त शुक्ल का दिनांक १२–११–१९४० का, इन को लिखा गया एक पत्र ही सब से बड़ा प्रमाण है :।

"विश्वास रखिए, आप का चित्र "सरस्वती" में छापने से मुझे व्यक्तिगत प्रसन्नता होगी। आप हिन्दी के प्रवीण लेखक ही नहीं, उस के निर्भीक सेवक भी हैं, हिन्दी में इस समय जो दो चार अग्रगण्य लेखक हैं, उन में एक आप भी हैं। गत बीस वर्षों से मैं आप की रचनाएं पढ़ रहा हूं और आप से भली प्रकार परिचित हूं। आपने राष्ट्र भाषा का सदैव गौरव बढ़ाया है।"

साधु आश्रम होशियारपुर।

श्री सन्त राम बच्चों के लेखक

श्री हरी चन्द पाराशर

श्री सन्त राम जी विषय ग्रौर शैली दोनों दृष्टिकोणों से द्विवेदी यगीन इतिवृत्तात्मक ढंग के लेखक हैं। उनकी समग्र साहित्य साधना चरित्र निर्माण के माध्यम से समाज सुधार के लिए है। इसी दिशा की एक कड़ी उनका वालसाहित्य है। वालसाहित्य से हमारा ग्रभिप्राय उन रचनाग्रों से है जो छः से वारह वर्ष के वच्चों की मानसिक ग्रावश्यकताग्रों को दृष्टि में रखकर लिखी गई हैं। लेखक की ऐसी रचनाएं एक दर्जन से ग्रधिक हैं, जोकि उनकी समग्र साहित्यिक साधना का लगभग छटा हिस्सा है। वालसाहित्य सम्वन्धी रचनाएं मौलिक भी हैं ग्रौर ग्रनूदित भी। ग्रनुवाद श्रीमती तारावाई मोड़क ग्रादि ऐसे महानुभावों की रचनाग्रों के हैं, जिन्हों ने वाल–शिक्षा में विशेष रचनात्मक कार्य किया है। लेखक ने स्वयं पैंसठ वर्ष की ग्रवस्था लांघ कर बालसाहित्य की सृजना ग्रारंभ की, परन्तु फिर भी ग्राश्चर्य की वात है कि बालमनोविज्ञान के ग्रनुसार उन्हों ने ग्रपने ग्रनुभव को छोटे वच्चों के लिए एकेहरे ढंग में लिखा है।

बच्चों के लिए कहानी वनाना ग्रौर कहानी कहना एक कला है। कला भी ऐसी जो साहित्यक शैली ग्रौर वाल–मनोविज्ञान की ग्रपेक्षाग्रों, दोनों तत्वों की वरावर की मांग करती है। इन दोनों तत्वों का संयोग वहुत कम मिलता है, सम्भवतः यही कारण है कि बालशिक्षा में ग्रधिक उन्नत कुछ प्रगतिशील योरोपीय ग्रौर ग्रमेरिकी देशों में बच्चों को कहानी सुनाने वाले विशेषज्ञों की बहुत कदर होती है। बच्चों के लिए कहानी वनाने की कला श्री सन्तराम जी में कमाल की हैं। इस बात का उदाहरण 'चिड़िया घर' शीर्षक पुस्तक की कहानियां हैं। ये कहानियां छः सात साल के वच्चों के लिए लिखी गई हैं, तब वच्चा कल्पनाशील होता है, उसकी जिज्ञासा कौतूहलमयी होती है, पशु पक्षियों की कहानियां उसे ग्रच्छी लगती हैं। 'चिड़ियाघर' शीर्षक पुस्तक की कहानियों की त्वरित गति उक्त ग्रवस्था के वच्चों की कल्पना ग्रौर कौतूहल को झकझोरने वाली है जिस से उनकी मानसिक त्वरा जागृत होकर सन्तुष्ट होती है, जाग्रण ग्रौर ग्रौर शमन का यह 'केथारसिस' लेखक के समग्र बाल साहित्य की स्पष्ट विशेषता है। "जादू का खेल" शीर्षक पुस्तक की कहानियों में परिस्थिति का संदर्भ ग्रधिक है परन्तु कल्पनामयता भी कम नहीं, ये कहानियां ग्राठ वर्ष के बच्चों की बाल मनोवैज्ञानिक ग्रपेक्षाग्रों क ग्रनुकूल हैं जब बच्चा "मानसिक त्वरा से हटकर शारीरिक यथार्थ की ग्रोर ग्राता है। 'शारीरिक यथार्थ' के उदय हो जाने पर वच्चा व्यक्तिपरक कहानियां सुनने में रुचि लेने लगता है, इस ग्रवस्था के बच्चों के लिए 'मां के लाल' शीर्षक पुस्तक की कहानियां लिखी गई हैं। बचपन का यह दूसरा उत्थान चरित्र निर्माण के लिए चेतनमन से प्रभाव ग्रहण करने लगता है, निजत्व का भाव (मास्टर सैंटीमैंट) जोर पकड़ने लगता है, चरित्र निर्माण की इस ग्रवस्था में ग्रादर्श

महानुभावों की जीवनियां बच्चे के चेतनमन के लिए नमूने का काम देती हैं। उक्त पुस्तक की सभी कहानियां बालमनोविज्ञान की इस अपेक्षा की पूर्ति करने वाली हैं।

'शारीरिक यथार्थ' के विकास के साथ साथ बच्चों में 'युयुत्सा' (पुगनेसिटी) जागृत होती है। युयुत्सा प्रवृति के उन्नयन के लिए 'बालचर' (स्काउट) अंदोलन संगठित किया गया है। इस अवस्था के बच्चों के लिए लेखक द्वारा अनूदित पुस्तकें "स्काउट बच्चों की कहानियां" और "मन बहलाव की कहानियां" उल्लेखनीय हैं, पहली पुस्तक का मूल लेखक गजानन महादेव है और दूसरी का मूल लेखक यालचन्द्र महादेव। ये दोनों पुस्तकें मराठी से अनूदित हैं, पहली में बच्चों के चेतनमन का संस्कार करने वाली कहानियां हैं, विशेषता यह है कि इस पुस्तक की सभी कहानियों को क्रमबद्ध करके "जीवन की निरन्तरता" वाला आभास दिया गया है। दूसरी में बच्चों के अवचेतन मन का परिष्कार करने वाली कहानियां हैं। 'नदी की कहानी', 'जादू की नाव', 'महाजनों की कहानियां', 'दादी की कहानियां', 'सुनहली कहानियां' भी अनूदित पुस्तकें हैं। लेखक ने अनुवाद अधिकांशतः मराठी से किए हैं। अनुवाद स्वयमेव मानसिक और बौद्धिक यातायात का एक प्रमुख साधन है, और राष्ट्र भाषा हिन्दी के लिए यह और भी आवश्यक एवं अनिवार्य है क्योंकि अनुवाद द्वारा ही यह विभिन्न तथा विविध प्रान्तीय प्रतिभा से उचित और अपेक्षित सहायता ले सकती है। लेखक ने प्रान्तीय भाषाओं से अनुवाद का कार्य आरंभ करके बच्चों के बाल–मस्तिष्क को अन्तर्प्रान्तीय बनाने का स्तुत्य प्रयत्न किया है।

मौलिक और अनूदित दोनों प्रकार की रचनाओं को समुचे रूप में देखने से श्री सन्तराम रचित बालसाहित्य की विशेषताएं और उपलब्धियां ये है :—

(१) उन्होंने पंजाब प्रान्त में प्रचलित लोक कथाओं को बालोपयोगी कहानियों का रूप दिया है और ऐसा करते समय लोक कथा में प्रचलित अनावश्यक कल्पना के अतिरेक को काट छांट दिया है। उदाहरणतया 'पंजाब की कहानियां तीन भागों में।

(२) पंच तंत्र की कथाओं को छः आठ वर्ष के बच्चों के लिए उपयोगी साहित्यिक ढंग में लिखा है।

(३) छः से बारह वर्ष के बच्चों की विभिन्न मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं के अनुसार उन्होंने विविध बाल साहित्य की रचना की है। उनकी रचनाओं में पशु पक्षियों सम्बन्धी और अन्य कल्पनाशील जादू की कहानियां भी हैं और व्यक्तिपरक ऐतिहासिक कहानियां भी। परन्तु साहित्य की रूपगत् दृष्टि से उन के बालसाहित्य में 'कहानी' ही प्रमुख है। बच्चों के चरित्रनिर्माण में सहायक हर बात को उन्हों ने कहानी का

रूप देकर लिखा है, क्योंकि कहानी में प्रतिफलित आदर्श बाल मानस में आसानी से घर कर लेता है ।

(४) शैली क्रियात्मक है, भाषा में क्रियात्मिकता लाने के लिए क्रिया पदों की बहुलता रखी है । तीसरी श्रेणी से पांचवीं श्रेणी तक के विस्तृत अध्ययन में ये पुस्तकें इसलिए अधिक उपयोगी हैं क्योंकि इन में पांचवीं श्रेणी तक के गहन अध्ययन में आई आधारभूत शब्दावली का ही विस्तृत प्रयोग है ।

बाल साहित्य की ये छोटी छोटी पुस्तकें शिक्षा संस्थाओं की एक बड़ी समस्या का सहज समाधान हैं । समस्या है कि बच्चों में साहित्यिक रुचि का विकास कैसे किया जाए ? जिन बच्चों की रुचि गहन अध्ययन वाली स्कूल की पाठय पुस्तकों में नहीं होती, उन्हें विद्यालय के कार्य-क्रम में आकृष्ट करने का शैक्षणिक साधन यही है कि उन की रुचि पाठान्तर पुस्तकों में उत्पन्न की जाए । प्रायमरी क्लास के स्तर में उपर्युक्त पुस्तकें पाठान्तर पुस्तकों के रूप में भली भांति प्रयुक्त की जा सकती हैं, क्यों कि इनमें कल्पना, कौतूहल, विचार और भाव सभी समायोजित है ।

बाल साहित्य से उद्धरण ।

१. पहाड़ों पर से नीचे उतर आने पर फिर उतनी मौज नहीं रहती । यहां सपाट धरती होती है । उस पर शान्ति के साथ चलना पड़ता है । थोड़ी सी घर्र घर्र, थोड़ी सी सर्र सर्र, थोड़ा सा खेल थोड़ा सा गाना ।

(नदी की कहानी)

२. उस दिन भादों की अष्टमी थी । बड़ी भयानक अन्धेरी रात थी । घनघोर घटा छा रही थी । मूसलाधार वर्षा हो रही थी । मथुरा की जेल में एक बालक ने जन्म लिया ।

(मां के लाल)

पंजाबी गीतों के संग्रहकार

श्री सन्त राम बी. ए.

आशानन्द वोहरा "विद्यार्थी"

"Old songs, the precious music of the heart."

Wordsworth: Poems: Dedicated to National Independence.

x x x x x

"Song is untouched by death."

(Cormina morte corent)

Ovid. Amores. Bk. i, Eleg. 15, 1.32.

x x x x x

हिन्दी साहित्य जगत के सिद्धहस्त एवं एकनिष्ठ लेखक श्री सन्तराम जी बी०ए० के नाम से कोई विरला-हिन्दी साहित्य प्रेमी अपरिचित होगा। इन्होंने हिन्दी साहित्य को जहां समाज सुधार, जात पात, इतिहास, यात्रा, नारीशिक्षा, शिशु पालन, जीवन-चरित, सन्ततिनिग्रह, रति-विज्ञान आदि विषयों पर अनेक बहुमूल्य ग्रन्थ रत्न समर्पित किये हैं वहां इन्होंने नारीजीवन से गुज़रने वाले प्रत्येक पल, क्रिया आदि से सम्बन्धित गीतों का एक सुन्दरतम संग्रह "पंजाबी गीत" के नाम से भी अर्पित किया है।

जीवन यापन के लिये जिस प्रकार अन्न आदि की आवश्यकता होती है उसी प्रकार जीवन को हुलारा देने के लिये गीतों की भी। गीतों में मानव की विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियों, तरंगों एवं मनोविकारों का, अहलाद एवं अवसाद के क्षणों की, कूकों एवं हूकों की अभिव्यक्ति होती है। इनमें मानवीय प्रकृति तथा अनुभूतियों की छाया निहित रहती है। इनमें समाज के रंगीन एवं फीके चित्र अंकित रहते हैं। इनमें हमारी तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक परिस्थितियों तथा सभ्यता और आचरण के नक्शे बने रहते हैं। यह गीत पंजाबी जीवन के दर्पण हैं। इनमें परम्परा से हमारी स्मृतियां सोती हैं।

संग्रह की आवश्यकता :— साहित्य साधक, पंजाबी जीवन के ज्ञाता श्री सन्तराम जी ने इस संग्रह में केवल नारी स्वभाव सुलभ कोमल भावनाओं से ओतप्रोत गीतों का सुचारू संचयन किया है। वे 'उपोद्घात' में लिखते हैं "सरकार ने भिन्न भिन्न जिलों के गज़ेटियरों में उन जिलों में बसने वाली

विभिन्न जातियों में पाई जाने वाली कहावतों का संग्रह कर रखा है । पर आज तक स्त्रियों के गीतों का संग्रह हमारे देखने में नहीं आया ।" इसीलिये उन्होंने इस ओर यह प्रयास किया है ।

सभ्यताभिमानी लोगों का मत है कि नारियों के गीतों में अश्लीलता टपकती है । इसलिये उनके स्थान पर गवैयों एवं भजनीकों से काम लेना चाहिए, पर जो मधुरता एवं रस से ओतप्रोत गीतों के साथ होती ढोल की टिक टिक में आनन्द आता है वह उन गायनाचार्यों के तबले मृदंग की थाप से युक्त गीतों में कहां । उनकी स्वरलहरियों में वह मिकियों की कू कू कहां ! वह संगीत कहां ! उनमें नारी हृदय की व्याकुलता एवं भाव विह्वलता कहां ? साथ ही यह बात भी उचित प्रतीत नहीं होती कि स्त्रियों के सभी गीत अश्लीलता के कलंक से कलंकित हों । और गायनाचार्यों के सभी गीत अच्छे । नृत्य और गायन के क्षेत्र में पुरुषों की दखलअन्दाजी उचित नहीं । उसे तो इनके साथ होड़ में आना ही नहीं चाहिए । प्राचीन काल में स्त्रियां केवल कुललक्ष्मियां ही न थी उन्होंने अपने इन क्षेत्रों मे विशेष उन्नति की हुई थी । वे अपने कला कौशल का प्रदर्शन सभ्य समाजों में करती थीं । यह व्यायाम उनके स्वास्थ्य और सौंदर्य को चार चांद लगा देता था । भारत में ही नहीं विश्व के अन्य देशों में भी नारी के पदचाप की थिरकन होती थी । नृत्य के साथ, उनके गीतों में भी उनकी किलकारी सोती थी । भारत पर मुसलमानों के आक्रमण होने पर नारी घर की कारा में बन्दिनी हुई घर की घुटन में उसकी आहों ने अभिव्यक्ति पाई पर........... ....? उसके सौन्दर्य पर आवरण डाल दिया गया । वह वासना की कठपुतली बन कर रह गई ।

सभ्यता के विकास के साथ लोगों ने पुरातनता का चोगा उतारा । जीवन में नवीनता की ओर आकर्षण बढ़ा । इस आकर्षणके बहाव में हमारे पुराने गीत भी बह निकले। पंजाब भी इन परिस्थितियों से कम प्रभावित नहीं हुआ । यहां के लोगों की चटक मटक में भी अन्तर पड़ा । आज झूले झूलती यौवन के मद से माती, बागों में किलकारी करती, मस्ती में झूमती वह प्रमदाएं कहां दिखाई देती हैं । उनके 'लुडी' जैसे नाच तो विवाहों पर भी देखने को नहीं मिलते ! और पंजाबी नौजवानों के भंगड़े केवल उत्सवों के लिये ही सुरक्षित हो गये हैं । साधारण जीवन में परिवर्तन हो चुका है । संघर्षशीलता बढ़ चुकी है । लोक गीतों का स्थान सिनेमा गीत लेते जा रहे हैं । जीवन संग्राम की बाज़ी जीतने के लिये नारी पुरूष दोनों कटिबद्ध हैं । प्रेम और विश्राम के क्षणों का अभाव ही होता जा रहा है । घुटन बढ़ती जा रही है । ऐसे जीवन को हुलसित करने के लिए कहीं कहीं, कभी कभी, कोई स्फूर्तिदायक तान नारी कलकंठों से सुनाई पड़ ही जाती है । उन्हीं तानों, ध्वनियों, गीतों के सुरक्षिकरण

के लिए पंजाबी जीवन के इस चितेरे ने, नारी की मूक हृत्तन्त्री के झंकृत करने के लिए, उसकी पुरातन कूकू की कहानी को उसके सम्मुख रखने के लिये, यह प्रयास किया है जो बहुत श्लाघनीय है ।

प्रस्तुत गीत संग्रह :—इस संग्रह के गीतों के अध्ययन से प्रतीत होता है कि प्राचीन भारतीय विशेष कर पंजाब के समाज में कुटुम्ब प्रथा के कारण घर के अनेक प्राणियों को सुख सुविधाएं उपलब्ध थीं, लोग ऐश्वर्य सम्पन्न थे। यहां की सुहावनी प्राकृतिक छटा, नदियां, लहलहाते खेत सब मन को मोहित करने वाले थे। वर्षा ऋतु पर झूले झूले जाते थे। माताएं अपनी पुत्रियों को नाना पकवान भेजती, विवाहों पर अनेक प्रकार के हंसी मजाक होते थे। पुत्रजन्म विवाह आदि उत्सवों पर खुशियां मनाई जाती थीं। स्त्रियां अपने प्रवासी पतियों की राह जोहती रहती थीं। सब दिन एक जैसे कहां होते हैं। पति हमेशा पत्नियों के क्रोड़ों में कहां विश्राम ले सकते थे तभी तो कहा भी गया है—

"सदा ना बागीं बुल बुल बोले,
सदा ना बाग़ बहारां,
सदा ना राज खुशी दे हुंदे,
सदा ना मजलिस यारां ।"

जीवन बदल गया।

अन्य लोकगीत संग्रहकारों-जैसे सर्व श्री रामसरन एडवोकेट (लाहौर) देवेन्द्र सत्यार्थी, अमृताप्रीतम, सन्तोख सिंह धीर, हरभजन सिंह, महेन्द्रसिंह रन्धावा, कुलवन्तसिंह विरक, नौरंगसिंह आदि की तरह लाला सन्तराम जी को भी अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। सब से बड़ी कठिनाई थी नारी की संकोच शीलता एवं लज्जा। और वह ठहरे विधुर पुरुष। शायद उन्हें महिलाओं के सम्पर्क में आने से कुछ हिचकिचाहट भी होती होगी। वह लिखते हैं "तो भी ईश्वर की कृपा और कई सज्जनों और देवियों से मैं होशियारपुर, जालन्धर, लुधियाना, फिरोज़पुर, गुरुदासपुर, लाहौर, अमृतसर, भेरा, कोटली, मण्डी, सुकेत, सियाल कोट और कैम्बलपुर के इलाके के गीतों का संग्रह कर पाया हू। इन गीतों को मैंने ठीक उसी प्रकार लिखने का यत्न किया है जिस प्रकार ये गाये जाते हैं।" नारी प्रेम-गीतों को सुनाने में ही संकोच करती है फिर लिखाना तो दूर रहा।

पंजाब के विभिन्न ज़िलों में गीत प्रायः एक से ही प्राप्त होते हैं। शब्द योजना के परिवर्तन पर भी भाव प्रायः वही रहता है। भाव की एकरूपता के कारण लाला जी ने उन टुकड़ों को एकत्र कर एक गीत के रूप में प्रस्तुत किया है। दूसरी बड़ी कठिनाई के विषय में ध्यान दिलाते हुए वे लिखते हैं "बहुत थोड़ी स्त्रियों को कोई पूरा गीत याद है। मुझे जब एक ही गीत के छोटे छोटे टुकड़े भिन्न भिन्न जिलों में मिले तो उस सब को मिला कर गीत का पूरा पाठ तैयार करना सुगम हो गया है। इस प्रकार मैं ने अनेक गीतों को विभिन्न

स्रोतों से पूर्ण बनाने का यत्न किया है।" इस कठिनाई का ध्यान दिलाते हुए एक अन्य संग्रह-कार ने भी लिखा है। It is true that a great many of the songs are the possession of the people as aw hole; no body knows when they were composed, they are repeated again and the only change is often a change for worse.

इस प्रकार उन्होंने अनेक प्रयासों से इस संग्रह को सर्वगुण सम्पन्न बनाने का यत्न किया है।

गीतों की झांकी :—**पंजाब में प्राय**: दो प्रकार के गीत प्रचलित हैं। प्रथम प्रकार गीतों में सामाजिक विकास और मानवीय अनुभूतियों की मौखिक कहानी सुनाई पड़ती है। यह गीत विभन्न स्थानों पर एक रूप में थोड़े से परिवर्तन के साथ मिल जाते हैं। इनमें 'झुंजने", 'सुहाग', 'घोड़ियां', 'वटना', 'खट मनसाना', 'वारहमासे', 'चौमासे' 'सिठनियाँ', 'सावन के गीत' 'बेटी की विदाई के गीत', 'झूल के गीत', 'विरह के गीत', 'टप्पे' 'थाल', 'छन्द', 'बोलियां और 'ढोले' आदि। भाव यह कि यह गीत जीवन के हर क्षण के साथी हैं। जन्म से मृत्यु तक गीतों का सहयोग मिलता है। इन्हें धर्म-जाति भेद ने स्पर्श नहीं किया। इनकी मस्ती से, इनमें सोती धड़कनों से पंजाबी जीवन पर विशेप प्रकाश पड़ता है। और इनके पढ़ने से पंजाबी स्वभाव की चटक मटक से भी हम परिचित हो जाते हैं। इसी बात का समर्थन करते हुए भारत की कोकिल —श्रीमती सरोजिनी नायडो ने एक बार कहा था "यदि आप वास्तविक रूप से लोगों की नवज़ से परिचित होना चाहते हैं, उनके उद्गारों को जानना चाहते हैं तो आपको लोकगीतों का आश्रय लेने पड़ेगा"।

दूसरे प्रकार के गीतों में वीर, भक्ति, और शृंगार रसों से ओतप्रोत गीतों की गणना की जाती है। जैसे 'वारें,' हीर रांझे, ससी पुन्नु, मिरज़े साहिबां आदि के किस्से।'

इस संग्रह के गीतों में प्रथम प्रकार के गीत संकलित हैं। और यहां कुछ उद्धरणों से उन गीतों की झांकी देखिए :—

झुंजने :—माता पिता के लिए पुत्र जन्म की घड़ियां कितनी आह्लाद मयी होती हैं। वे पितृ ऋण से उऋण होते हैं। स्त्रियां मंगलगीतों के रूप में जो गीत गाती हैं उसे 'झुंजने' कहते हैं। एक उदाहरण देखिए :—

व्याई गु० (१७)

'कन्हैया मेरा रिढ़न जमीन पर लग्गा।
झग्गा बनाया टोपी बनावां तग्गा हरे।
जाँ कृष्ण मेरा पहनन लग्गा, किहा प्यारा मिन्नू लग्गे, हरे।
मैं सदके जावां रिढ़न पर लग्गा।"

सुहाग और घोड़ियां:–विवाह उत्सव से कुछ दिन पूर्व ही लड़की वालों के यहां जो गीत गाये जाते हैं उन्हें "सुहाग" कहते हैं। और लड़के वालों के यहां जो गीत गाये जाते हैं उन्हें "घोड़ियां" कहते हैं। एक एक उदाहरण देखिए।

सुहाग—(हो)–(२७):—"बेटी, चन्नण दे ओहले लाड़ों क्यों खड़ी ?
मैं तां खड़ी सी वावल जी दे वार, कन्या क्वार
वावल वर लोड़िए।
नी जाइए, केहो जिहा वर लोड़िए !
तारिआं विच्चों चन्द,
चन्दा विच्चों कान्ह,
कन्हैया वर लोड़िए।"

घोड़ी—(अ)—(६४):–पहनों कपड़े, वीरा वे तेरी जंज सवेरे उपड़े वारी वे।
पहनों लुंगियां, वीरा वे तेरियां मुरादां पुग्नियां वारी वे।
चढ़ वट ते वीरा वे तेरे लक तलवार सोहवे, वारी वे।
वारी जे तू चढ़ेआ घोड़ी तेरे नाल भरावां दी जोड़ी।
जे वीरा वढी जंडी, भैण ने मन शक्कर वण्डी।
जे भैण फड़ी वाग, पंज रुपैये भैणदी लाग ।।
जम जम वीरा जावीं सोहरे।

इन गीतों के द्वारा ही वहन प्रसन्नता से भर जाती है। सचमुच कन्या का कार्य ही मानव को अधिक से अधिक प्रसन्नता प्रदान कराना है। तभी तो Schiller ने एक स्थान पर लिखा है। "All art is dedicated to joy and there is no higher and no more more serious problem then how to make man happy, the right art is that alone which creats the highest enjoyment. इन घोड़ियों के गायन से वहनों के मन अह्लाद से झूम उठते हैं ? इस में ही कला की सार्थकता निहित है।

बटना :—वैवाहिक उत्सव से कुछ दिन पहले वर और वधु की शारीरिक शुद्धि के निमित्त उबटन तथा तैलमर्दन आदि किया जाता है। उस समय जो गीत गाये जाते हैं उन्हें 'बटना' कहते हैं :—

एक उदाहरण देखिए :—

गीत गु० (८५)

"इस वेहड़े कौन कौन नहावे सीता न्हावे ता सिरीराम आवे।
तेरे ता कारण पतिजी रखनीआं नुराते,
तेरे ता कारण गोरिए सोसठ तीरथ न्हाते।"

सिठनी:—विवाह के अवसर पर बरात में आये सम्बन्धियों तथा लड़के को जो गालियाँ (अपशब्द) दी जाती हैं उन्हें 'सिठनियां' कहा जाता है। हास्य व्यंग्य और विनोद तो उसी समय, देखने योग्य होता है।

एक उदाहरण देखिए :-

(१) आया नी पुत नटनी दा, नटनी कोठे टपनी दा,
आया नी पुत जारनी दा, जारनी अखियां मारनी दा।
(गु० २१८) (२) "साडे ते वेहड़े मुंढ मकई दा, दाणे ते मंगदा उद्धल गई दा,
भट्ठी ते तपदी नहीं वे लज्जेओ, लज्ज तुहानू नहीं।"

खट मनसना:—जब लड़की का पिता लड़की तथा लड़के को एक खाट पर बैठा कर लड़की का दान करता है तो उस समय वैराग्य से भरे हुए गाये जाने वाले गीतों को 'खट मनसना' कहते हैं। उदाहरण देखिए :—

"थाली नाल कटोरा सोहे लेफ नाल तुलाई।
खट्टे बैठी धी सोहे, पास बैठा जुआई।"

विदाई के गीत :—लड़की की विदाई का दृश्य कितना करुणाजनक तथा हृदय-द्रावक होता है। ऐसे अवसर पर वैराग्य धारण करने वाले महर्षि कण्व भी फूट पड़े थे तो साधारण प्राणियों का तो कहना ही क्या '? उस समय तो चारों ओर आँसुओं की धारें प्रवाहित होती दिखाई देती हैं। उन गीतों को जो मन की कोमल भावनाओं से भरे रहते हैं विदाई गीत की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। उदाहरण देखिए :—

(ह–गीत–१४६) "बोलनी मेरी बन तन कोयल मापे छोड़ कहां चल्लीएं,
बावल मेरे ने वचन जु कीते वचनां दी बधड़ी मैं चल्लीएं,
मां सुपुत्ती ने दाज रंगाया, दाज पुचावन मैं चल्लीएं।"

झूले और चरखे के गीत :—पावस काल में छोटी बड़ी सभी आयु की स्त्रियां झूले झूलती हैं। हंसी के कुछ क्षणों के बाद जब रुदन के क्षण आते हैं तो कवि हृदय चोट से घायल हो सहसा अपना उबाल बाहर निकालता है। तभी तो कहा जाता है जिन गीतों में वेदना का स्वर नहीं वह गीत गीत कहलाने के अधिकारी नहीं।

तभी तो शैली ने कहा है :—

"Our sweatest songs are those
That tell of saddest thought."

जो गीत हम अपने कानों से सुनते हैं वह हमारे हृदयों में गाये जाते हैं तभी तो हम

१."............महात्माजन अंधेरे में दीपक के समान होते हैं, जिस प्रकार दीपक की सहायता से मनुष्य ठोकर नहीं खाता और गढ़े में गिरने से बच जाता है उसी प्रकार इन महापुरुषों के चरण-चिन्हों पर चलने से मनुष्य संसार में दुःख नहीं पाता...........।" ("दयानन्द" प्रस्तावना ।)

२."............आज हमारे स्कूलों में जो इतिहास को एक शुष्क और नीरस विषय समझा जाता है इसका कारण अच्छी पुस्तकों का अभाव ही है..........मेरा यह यत्न रहा है कि वर्णन इतना ललित और सरस हो कि पाठक के लिये उसे समाप्त किए बिना छोड़ देना कठिन हो जाये —" (अतीत कथा—भूमिका) ।

३. "इस पुस्तक में दिए नारी चरितों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि नारी-हृदय जहां अत्यन्त कोमल है, वहां अवसर पड़ने पर उसमें युद्ध जैसा भीषण कर्म करने की भी क्षमता है। महिला समाज में जहां एक ओर सीता, सावित्री और मीरा जैसी देवियां हो गई हैं, वहां साथ ही इस समाज ने दुर्गावती, लक्ष्मीबाई और आन्नामारी जैसी योद्धा एवं साहिसिक वीरागनाएँ भी उत्पन्न की हैं।" (महिला-मणिमाला—प्राक्कथन ।

४. वीरगाथा......का 'निवेदन लाला जी द्वारा लिखित अतीत कथा की भूमिका की ही प्रतिलिपि है ।

५."...........इसका एकमात्र उद्देश्य तो बालक-बालिकाओं को पंजाब केसरी महाराजा रणजीत सिंह की मोटी-मोटी घटनाओं से परिचित कराना और महाराज की शताब्दि के अवसर पर उनकी पुण्य स्मृति में श्रद्धा के फूल अर्पण करना है।" (रणजीत-चरित निवेदन)।

६. "जिन महापुरुषोंने भारत का 'इतिहास' बनाया है या जो बना रहे हैं, उनमें से कुछ की ही जीवन-कथाएं देने का इस पुस्तक में यत्न किया गया है —इस पुस्तक में दिये गये जीवन वृत्तांत भारत के इतिहास को प्रकाशित करने, वरन् विस्तार के साथ बताने का काम देते हैं (भारत के महापुरुष – प्रस्तावना)

इन सब प्रतिज्ञाओं से लाला जी का जीवनी-लेखक रूप हमारे सामने आ जाता है कि उनका उद्देश्य विशुद्ध राष्ट्रीय रहा है और इस रूप को उनके चरितनायकों के शब्दों में भी हम चित्रित पाते हैं। और जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, जीवनी-लेखक रूप में उन्होंने मर्यादा का पालन पूर्णरूप से किया है, एकपक्षीय अथवा एकान्तिक विचारधारा को अपनाकर वह नहीं चले । लाला जी ने किसी प्रान्त विशेष का मोह अथवा नायक विशेष या जाति विशेष का मोह नहीं किया। उन्होंने दयानन्द का जीवन भी लिखा और महाराज रणजीत सिंह का भी ! शिवाजी का जीवन भी लिखा तो गुरु गोविन्द सिंह जी का

लालाजी की महापुरुषों के सम्बन्ध में लिखी जीवनियों में महात्मा बुद्ध, अशोक, राणा प्रताप, वीर शिवाजी, गुरु गोविन्द सिंह, वीर वन्दा वैरागी, महाराजा रणजीत सिंह और कवीन्द्र रवीन्द्र तथा महात्मा गांधी जी आदि सभी हैं। इसी प्रकार महिलाओं में मैत्रैयी मदालसा से लेकर झांसी की रानी लक्ष्मी वाई तक सब हैं। इनमें से कुछ जीवनियां तो स्वयंअपना पूर्णरूप लिये पुस्तकाकार हैं और कुछ संग्रह रूप में हैं। परन्तु इस से कोई अन्तर नहीं पड़ता कि वे संग्रह रूप में क्यों हैं? क्योंकि जीवनी के लिये जिस तत्व की अपेक्षा रहती है वह सब उनमें भी उपलब्ध हो जाता है अन्तर है तो केवल आकार का। इन जीवनियों के सम्बन्ध में भी संक्षेप में कुछ कहना मेरा कर्तव्य हो जाता है इसलिह पहले इन पर भी दृष्टिपात कर लेना अच्छा है।

दयानन्दः—महर्षि दयानन्द का जीवन चरित है जिसे लाला जी ने आज से लगभग पैंतीस वर्ष पहले लिखा और सन् १९३० में इलाहावाद से प्रकाशित हुआ। इसमें महर्षि दयानन्द का जीवन बहुत सरस ढंग से दिया है।

अतीत कथाः—इस संग्रह में वीर शिवाजी और काहनो जी आंगे के जीवन हैं (साथ-साथ पृथ्वीराज और राजपूतनी का बदला नामक दो वहुत छोटे-छोटे एकांकी भी हैं। यद्यपि ये दोनों एकांकी लाला जी द्वारा लिखित नहीं। संभव है पुस्तक को और सरस तथा उपयोगी बनाने के विचार से संकलित किया हो) यह संग्रह १९३० में प्रकाशित हुआ।

महिला मणिमालाः—यह भी एक संग्रह पुस्तक है, परन्तु है सभी जीवनियों और स्वयं लेखक द्वारा लिखित। इसका प्रकाशन समय १९४१ है।

वीर गाथाः—संग्रह पुस्तक है। इसका लेखन भी सन् ३५-३६ के लगभग हुआ और प्रकाशन इस रूप में वहुत देर वाद। प्रस्तुत संग्रह में 'वीरवैरागी को छोड़ कर शेष 'अतीत कथा'' और 'महिला-मणिमाला,' के ही जीवनी-निवंध हैं।

रणजीत चरित—महाराजा रणजीत सिंह का संक्षिप्त जीवन चरित है। इस का हला संस्करण पाकिस्तान वनने से पूर्व लाहौर से प्रकाशित हुआ और तीसरा सन् १९५८ ं इलाहावाद से।

भारत के महापुरुषः—यह जीवनियों की संग्रह-पुस्तक है। इसमें नौ महापुरुषों की ीवनियों निवन्ध रूप में दी गई हैं। यह भी इलाहावाद से ही प्रकाशित हुई।

यह सब कुछ लिखने से मेरा अभिप्राय केवल इतना ही है कि लाला जी ने जीवनी ाहित्य लिखने की ओर वहुत ध्यान दिया है और विना किसी भेदभाव के वे सभी हान् व्यक्ति पुरुप और महिलाएँ लिये हैं जो अपने जीवन द्वारा देश, समाज या साहित्य ो वृद्धि में सहायक रहे है। इसके साथ ही जीवनी या जीवनी संग्रह के आरम्भ में इन्होंने क प्रतिज्ञा ली है जो लेखक के निजी उद्देश्य को स्पष्ट कर देती है। जिसका उल्लेख यहां ावश्यक प्रतीत होता है :—

से मुंह नहीं मोड़ सकता, इसीलिये वह ऐसे स्थलों पर परोक्ष रूप से दोष दर्शन की झलक मात्र अवश्य दे जाता है। इसके साथ ही जीवनी–लेखक को इतनी भी छूट है कि अपने उल्लेख्य नायक के सम्बन्ध में लिखित अथवा अलिखित या विश्वस्त सूत्रों से प्राप्त सचाई को संकलित करके कुछ इस ढंग से संजो कर सामने रखता है कि वह पढ़ने वाले के मन पर सीधा प्रभाव डालते है।

मुझे इस बहस में नहीं पड़ना कि जीवनी लिखने का क्रम कब से चला और कहां से चला। हां इतना अवश्य कहूंगा कि यह आज का नहीं सदियों पुराना है। रामायण और महाभारत, अठारह पुराण, उपपुराण भागवत् आदि संस्कृत के ग्रन्थों और चौरासी वैष्णवों की वार्ता, दो सौ बाविन वैष्णव की वार्ता, और भक्तमाल आदि में वर्णित व्यक्तियों के चरित्र सभी जीवनी साहित्य हैं। और यह परम्परा अब और भी विशाल और सुथरे रूप में चल रही है, क्योंकि तब शायद इतने साधन नहीं थे जितने अब उपलब्ध हैं इस के साथ ही मुझे यह भी नहीं कहना कि जीवनियाँ किस ढंग पर लिखी गई। हां इतना अवश्य है कि पहले जहां जीवनी लेखकों का दृष्टिकोण केवल धार्मिक था वहां बाद में ऐतिहासिक राजनीतिक सामाजिक और साहित्यिक भी बना और इस आधार पर इसाई और मुसलमानों के प्रचार की प्रतिक्रिया में विशुद्ध भारतीय दृष्टिवादी लेखकों ने अपने देश के गौरव और उन्नति के लिये उन सभी नायकों के चरित्र लिखे जो देश भक्त थे, राजनीतिज्ञ थे और इसी तरह समाज सेवा और साहित्यकार थे। और प्रत्येक जीवनी लेखक का दृष्टिकोण यही रहा है कि वह अधिक से अधिक लोगों में राष्ट्रीयता का संचार कर सके। क्रमश : यह परम्परा उतरोत्तर प्रगति करती गई और बाद में यह साहित्य का एक महत्व पूर्ण अंग समझ कर अपनाई गई और तब जीवनी–लेखकों ने इस अंश को और भी समृद्ध किया।

मेरे पहले कहे गए शब्दों के आधार पर लाला सन्तराम जी का नाम ऐसे जीवनी लेखकों में आता है जिन्होंने सर्वज्ञता का दावा न करते हुए भी उल्लेखनीय नायकों—नायिकाओं के चरित्रों में "सब कुछ" देने का प्रयत्न किया है और वे इस में सफल भी हुए हैं। लालाजी ने अपने नायकों और नायिकाओं में ऐसे महापुरुषों को चुना है जो वीर भी हैं, देशभक्त भी हैं, सुधारक हैं और साहित्यिक भी हैं। उनका इस प्रकार का संचालन उन्हें किसी एक वर्ग या किसी एक पक्ष का ही बना कर नहीं रखता अपितु सभी वर्गों का प्रिय समद्रष्टा और सब मानव मात्र को एक परम पिता की संतान मान कर चलने वाला बनाता है। अपने जीवनी चरितों में उन्होंने जिन व्यक्तियों को चित्रित किया है वे चाहे गुजरात के थे या बंगाल के, चाहे वे महाराष्ट्र के थे या पंजाब के, परन्तु वे सभी भारत के थे और भारतीयता की नींव सुदृढ़ करने में प्रयत्न शील थ—इसीलिए उन के चरित्र से एक तरह की प्रेरणा, एक प्रकार की शक्ति प्राप्त हो सके यही चित्रित करना लाला जी का उद्देश्य रहा है। और उनका ऐसा करना उन्हें उन राष्ट्रीय लोगों की श्रेणी में ला खड़ा करता है जिन्होंने हर प्रकार से अपने देश, समाज और संस्कृति को उन्नत करने में अपना सहयोग दिया।

१."...........महात्माजन अंधेरे में दीपक के समान होते हैं, जिस प्रकार दीपक की सहायता से मनुष्य ठोकर नहीं खाता और गढ़े में गिरने से बच जाता है उसी प्रकार इन महापुरुषों के चरण-चिन्हों पर चलने से मनुष्य संसार में दुःख नहीं पाता...........।" ("दयानन्द" प्रस्तावना ।)

२."...........आज हमारे स्कूलों में जो इतिहास को एक शुष्क और नीरस विषय समझा जाता है इसका कारण अच्छी पुस्तकों का अभाव ही है..........मेरा यह यत्न रहा है कि वर्णन इतना ललित और सरस हो कि पाठक के लिये उसे समाप्त किए बिना छोड़ देना कठिन हो जाये —" (अतीत कथा—भूमिका) ।

३. "इस पुस्तक में दिए नारी चरितों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि नारी-हृदय जहां अत्यन्त कोमल है, वहां अवसर पड़ने पर उसमें युद्ध जैसा भीषण कर्म करने की भी क्षमता है। महिला समाज में जहां एक ओर सीता, सावित्री और मीरा जैसी देवियां हो गई हैं, वहां साथ ही इस समाज ने दुर्गावती, लक्ष्मीबाई और आन्नामारी जैसी योद्धा एवं साहिसिक वीरागनाएँ भी उत्पन्न की हैं।" (महिला-मणिमाला—प्राक्कथन ।

४. वीरगाथा......का 'निवेदन लाला जी द्वारा लिखित अतीत कथा की भूमिका की ही प्रतिलिपि है ।

५."...........इसका एकमात्र उद्देश्य तो बालक-बालिकाओं को पंजाब केसरी महाराज रणजीत सिंह की मोटी-मोटी घटनाओं से परिचित कराना और महाराज की शताब्दि के अवसर पर उनकी पुण्य स्मृति में श्रद्धा के फूल अर्पण करना है।" (रणजीत-चरित निवेदन)।

६. "जिन महापुरुषोंने भारत का 'इतिहास' बनाया है या जो बना रहे हैं, उनमें से कुछ की ही जीवन-कथाएं देने का इस पुस्तक में यत्न किया गया है —इस पुस्तक में दिये गये जीवन वृत्तांत भारत के इतिहास को प्रकाशित करने, वरन् विस्तार के साथ बताने का काम देते हैं (भारत के महापुरुष – प्रस्तावना)

इन सब प्रतिज्ञाओं से लाला जी का जीवनी-लेखक रूप हमारे सामने आ जाता है कि उनका उद्देश्य विशुद्ध राष्ट्रीय रहा है और इस रूप को उनके चरितनायकों के शब्दों में भी हम चित्रित पाते हैं। और जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, जीवनी-लेखक रूप में उन्होंने मर्यादा का पालन पूर्णरूप से किया है, एकपक्षीय अथवा एकान्तिक विचारधारा को अपनाकर वह नहीं चले । लाला जी ने किसी प्रान्त विशेष का मोह अथवा नायक विशेष या जाति विशेष का मोह नहीं किया। उन्होंने दयानन्द का जीवन भी लिखा और महाराज रणजीत सिंह का भी ! शिवाजी का जीवन भी लिखा तो गुरु गोविन्द सिंह जी का

सिठनी:—विवाह के अवसर पर बरात में आये सम्बन्धियों तथा लड़के को जो गालियाँ (अपशब्द) दी जाती हैं उन्हें 'सिठनियां' कहा जाता है। हास्य व्यंग्य और विनोद तो उसी समय, देखने योग्य होता है।

एक उदाहरण देखिए :—

(१) आया नी पुत नटनी दा, नटनी कोठे टपनी दां,
आया नी पुत जारनी दा, जारनी अखियां मारनी दा।
(गु० २१८) (२) "साडे ते वेहड़े मुंढ मकई दा, दाणे ते मंगदा उद्धल गई दा,
भट्ठी ते तपदी नहीं वे लज्जेओ, लज्ज तुहानू नहीं।"

खट मनसना:—जब लड़की का पिता लड़की तथा लड़के को एक खाट पर बैठा कर लड़की का दान करता है तो उस समय वैराग्य से भरे हुए गाये जाने वाले गीतों को 'खट मनसना' कहते हैं। उदाहरण देखिए :—

"थाली नाल कटोरा सोहे लेफ नाल तुलाई।
खट्टे बैठी धी सोहे, पास बैठा जुआई।"

विदाई के गीत :—लड़की की विदाई का दृश्य कितना करुणाजनक तथा हृदय-द्रावक होता है। ऐसे अवसर पर वैराग्य धारण करने वाले महर्षि कण्व भी फूट पड़े थे तो साधारण प्राणियों का तो कहना ही क्या '? उस समय तो चारों ओर आँसुओं की धारें प्रवाहति होती दिखाई देती हैं। उन गीतों को जो मन की कोमल भावनाओं से भरे रहते हैं विदाई गीत की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। उदाहरण देखिए :—

(ह–गीत–१४९) "बोलनी मेरी बन तन कोयल मापे छोड़ कहां चल्लीएं,
बाबल मेरे ने वचन जु कीते वचनां दी बधड़ी मैं चल्लीएं,
मां सुपुत्ती ने दाज रंगाया, दाज पुचावन मैं चल्लीएं।"

झूले और चरखे के गीत :—पावस काल में छोटी वड़ी सभी आयु की स्त्रियां झूले झूलती हैं। हंसी के कुछ क्षणों के बाद जब रुदन के क्षण आते हैं तो कवि हृदय चोट से घायल हो सहसा अपना उबाल बाहर निकालता है। तभी तो कहा जाता है जिन गीतों में वेदना का स्वर नहीं वह गीत गीत कहलाने के अधिकारी नहीं।

तभी तो शैली ने कहा है :—

"Our sweatest songs are those
That tell of saddest thought."

जो गीत हम अपने कानों से सुनते हैं वह हमारे हृदयों में गाये जाते हैं तभी तो हम

सारे संग्रह में अधिकतर होशियारपुर के ही गीत संकलित हैं। शायद संग्रहकारों ने अन्य जिलों के गीतों के लिये कम प्रयास किया है या उसे वहां पर मिले ही इतने हों। पर मेरी राय में गीत कम नहीं। संग्रहकार का प्रस्तुतीकरण का प्रयास प्रशंसनीय होने पर भी अन्य जिलों के गीत के संग्रह के लिये कम प्रयास हुआ है।

उद्देश्य.—संग्रहकार का उद्देश्य केवल इतना ही है कि वह पाठक का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता है। प्राचीन रसीले गीतों को काल-कवलित होने से बचाने के लिये ही उन्होंने इसे पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है।

हिन्दी साहित्य को देनः—इस संग्रह द्वारा संग्रहकार ने पंजाबी भाषा से अनभिज्ञ पाठकों को इन के हिन्दी रूप से जो रसास्वादन करा कर उपकार किया है वह सचमुच उस की हिन्दी साहित्य को, हिन्दी भाषा भाषियों को, एक बहुमूल्य देन है। विशेष श्लाघनीय कार्य तो यह है कि उन्होंने हिन्दी पाठकों के लिये इस की टीका भी प्रस्तुत कर दी है। संग्रहकार से बढ़ कर उनका महत्व टीकाकर के रूप का है। पाद टीका में उन्होंने शब्दान्तर और पाठभेद को देकर विभन्न ज़िलों से प्राप्त टुकड़ों को अलग अलग दिखाया है तथा अनेक स्थानों पर टिप्पणियां देकर गीतों को समझाने का प्रयास किया है। सारांश के रूप में इस संग्रह से यही विदित होता है कि लाला सन्तराम जी के हृदय में पंजाबी गीतों के लिये अगाध प्रेम है। उन्हें पंजाब से प्यार है। उन्हें यहां की सुहावनी नैसर्गिक छटा मुग्ध किये हुए है। यहां की बल खाती, सुरीली तानें अलापती, नाचती कूदती किलकारियां भरती स्त्रियों के गीतों ने आकर्षित किया हुआ है जिस से प्रेरित हो उन्होंने इन्हें काल की गरमी सरदी से बचाने के लिये संग्रह का रूप देकर अमर बना दिया है।

जीवनी लेखक-सन्तराम

ओम प्रकाश "आनन्द"

मनुष्य के लेखक को जिस दिन अपने पहले के मनुष्यों, और घटनाओं का लेखा-जोखा रखने का विचार उत्पन्न हुआ था। इतिहास के साथ साथ जीवनी लेखन का सूत्रपात भी उसी दिन हो गया था, लेकिन एक सीमा-रेखा पर पहुंच कर इतिहास और जीवनी के लेखक की दृष्टि "कुछ" और "सब कुछ" की ऐनक से देखने के कारण दो रुपों में विभक्त हुई और वहीं से मनुष्य का लेखक इतिहासकार और जीवनीकार इन दो रुपों में सामने आया। इतिहास लेखक ने बीते समय के "कुछ" को अपनाना ही ठीक समझा और जीवनी लेखक ने "सब कुछ" को। इसे अगर हम बहुत ही सीधी-सादी भाषामें कहना चाहें तो यों कह सकते हैं कि बीते समय के लोगों और घटनाओं में से विशेष या "कुछ" से ही इतिहास लेखक अपना मोह रखता है जबकि जीवनी लेखक सामान्य और "सब कुछ" से। इतिहास लेखक को एक सत्य के बंधन में बंध कर चलना होता है इसलिए वह बेचारा अपनी इच्छा से किसी नायक के जीवन की उन घटनाओं को ग्रहण नहीं कर सकता जिसका सम्बन्ध इतिहास के साथ न हो वह उन्हें स्वेच्छा से त्याग भी नहीं सकता, जिनका सम्बन्ध इतिहास के साथ हो परन्तु जीवनी-लेखक का क्षेत्र विशाल है। वह अपने नायक के जीवन की उन सभी घटनाओं को बड़े आराम के साथ सहज भाव से अपनाता चलता है जिन से उसके लेख्य विषय में एक प्रकार की चमक आती है। वह अपने नायक की दिनचर्या से लेकर रात को सोने के सभी क्रिया कलापों का वर्णन अत्यंत आवश्यक समझता है जबकि इतिहास लेखक के लिये इनका कोई महत्त्व नहीं।

अपनी कल्पना से बनाए किसी नायक या नायिका के सभी कामों का लेखा-जोखा रखने का और उनकी प्रत्येक गति विधि से परिचित होने का दावा उपन्यासकार तो कर सकता है। क्योंकि वह बाहरी परिस्थितियों को इच्छानुसार परिवर्तित करने का अधिकार अपने पास रखता है, परन्तु जीवनी लेखक ऐसा कोई अधिकार अपने पास नहीं रखता इसी लिये वह सब कुछ वर्णन करते हुए भी, सब कुछ बतलाते हुए भी सर्वज्ञता का वैसा दावा नहीं करता। उसका काम तो केवल नायक के आंतरिक और बाहय स्वरूप को कलात्मक रुप से प्रस्तुत कर देना है। अपने नायक का स्वरुप---उसके गुण दोषों के कारण राज दर्बारों के भाट या चारण भी बखान तो करते ही आए हैं परन्तु उनकी दृष्टि अपने नायक के केवल गुणों तक और शत्रु की निन्दा तक ही सीमित रहती है। नायक का साधारण सा गुण और शत्रु की निन्दा, राई से पर्वत के रूप में वर्णन करना उनका काम है लेकिन जीवनी लेखक शत्रु-मित्र के गुण-दोषों में अपना संतुलन बना कर चलता है। हां इतनी छूट ज़ीवनी-लेखक अवश्य लेता है कि अपने नायक के दोषों का उपहास वह चाहे अपनी सहृदयता के कारण न करे परन्तु सत्य

के माध्यम से प्रकट करने का प्रयास करता है। तभी तो लिखा गया है

"Men, even when alone, lighten their labors
by song, however rude."—Quintilian

... ...

"Glorry cares will be lightened by songs."—Horace.

पर एकान्त में रो कर ही मन हलका नहीं होता —उसे तो दु:ख बटाने वाला चाहिए—जब नारी को विरह सताता है तो वह साथी को पास न पाकर प्रकृति को ही अपना दु:ख सुनाती है और कहती है —

गीत ह—(१८३)

"पिप्पल देंआ पत्तेआ वे क्यूं खड़ खड़ लाई, वे क्यों खड़ खड़ लाई ?
झड़ गए पुराने वे रुत नवेंआ दी आई आ
पिप्पल देआ पत्तेआ वे क्यों छोड़ीआं सी लगरां ?
वे वीवा कौन ल्यावे परदेसां दी खवरां।"

विरहण को अपने परदेसी का सन्देशा चाहिए ! यह गीत तभी निसृत होते हैं जब उसका माहिया, उसका ढोला, उसके पास नहीं। इनके प्रस्फुटन के विषय में जेम्स थाम्पसन ने लिखा है:

"Singing is sweet, but be sure of this,
Lips only sing, when they cannot kiss."

—Sunday up the River.

बारहमासा:—वियोग में बारहमासों के रूप में रमणीहृदय अपनी वेदना के उद्गारों को प्रकट करती है। कभी वह छै मासे के रूप में, कभी चौमासे के रूप में वह चकवी की गति को प्राप्त हो पिया पिया पुकारती है। उस समय उस के अन्तस्थल से निसृत गीतों में कितनी वेदना भरी रहती है।

चौमासे के एक गीत के भाव को W. G. Archer द्वारा गीत के रूप में Record किए हुए रूप को देखिए, जो अनायास ही ध्यान में आ गया है। इसमें बादल प्रतीक बना हुआ है।

"June is the month of parting friend
The sky glowers with gloom
Leaping and reeling the god rains

And my sweet budding breasts are wet
All my friends sleep with their husbands
But my own husband is a cloud in another land."

नारी पति के बिना इस समय में कैसे रहे ?

गीत तो केवल माध्यम ही है। इनके द्वारा हम अपने मन के आवेग को प्रकट कर कुछ हलके हो लेते हैं। इनक द्वारा ही व्यथा का भार दूर होता है। जो रो और गा नहीं सकता उसकी क्या दशा होती होगी—इसे ईश्वर ही जानता है। नारी तो अपनी हूकों को इनके द्वारा अपने भाव प्रकट कर ही लेती है प्रकृति को—काग—कोयल—कपोत को कह मन को शान्त कर ही लेती है। तभी तो कहा गया है

"He who sings scares away his woes."

—Cervantes Don Quite Pt. (i) Ch. 22

इस प्रकार गीतों की झांकी देखते हुए अपने आपको ही भूल बैठे ! आइये अब इस संग्रह की कुछ प्रमुख विशेषताओं से भी परिचित होलें !

भाषा—इन गीतों की भाषा पुरानी पंजावी है। जो अपनी सरसता और माधुर्य का सानी नहीं रखती। स्त्रियां प्रायः अनपढ़ होती हैं। इस कारण वह हिन्दी संस्कृत के शब्दों का अच्छी तरह से उच्चारण नहीं कर पातीं। और यहां तो कुछ कदम चलने पर भाषा बदल जाती है वहां पर दुपट्टा यदि दुक्ट्टा' बन जाये तो कोई विशेष आश्चर्य नहीं होगा। कई शब्द इनमें बहुत पुराने हैं जिन्हें आज की बोलचाल में की भाषा में स्थान न मिलने के कारण वह केवल भाषा वैज्ञानिकों के लिये ही मनोरंजन का विषय हो सकते हैं। जैसे होलर-कुंगू कलियर आदि। इन गीतों की भाषा पंजावी होने पर भी हिन्दी का सामीप्य लिये हुए हैं।

गीतों का वैज्ञानिक वर्गीकरण:—इस संग्रह के गीत पंजाब के विभिन्न जिलों से होने के कारण संग्रहकार ने ज़िलों का कुछ सांकेतिक नामकरण कर लिया है। जिस से गीत प्रान्तीयता को प्रकट करने पर भी इस बात के द्योतक हैं कि वह गीत वहां पर अधिक प्रचलित हैं। वैसे तो वह अनेक दूसरे स्थानों पर भी बोले-गाये जाते हैं। गीत भी भला कभी सीमाओं में किसी ने बांन्धे हैं? वर्गीकरण इस प्रकार है। जिसे आप ऊपर दी हुई झांकी के उदाहरणों से अच्छी प्रकार समझ सकते हैं।

अ—अमृतसर, लु—लुधियाना फ—फीरोज़पुर, ला—लाहौर, ज—जम्मू ह—होशियारपुर, गु—गुरदासपुर कै—कैम्बलपुर जा—जालन्धर ! सि—सियालकोट। भे—भेरा

भी। उनके जोवन-चरित्रों में जहां बुद्ध पत्नी यशोधरा है और बुद्ध शिष्या विशाखा है, वहां ईसाई धर्मावलम्बिनी अगथा भी है, शैव मतानुयायिनी अहल्याबाई है तो रामभक्त शवरी भी। दुर्गावती है तो लक्ष्मीबाई भी। बंगाल के रवीन्द्र नाथ हैं तो गुजरात के गांधी भी हैं। उनकी यह समदर्शिता ही उन्हें सच्चा और निष्पक्ष जीवनी लेखक सिद्ध करती है।

अंत में जोवनी लिखने की शैली के सम्बन्ध में कुछ शब्द कह लेना आवश्यक है। लाला जी विशुद्ध हिन्दी-भक्त हैं और अपने इस "विशुद्ध' रूप को व मुक्त कण्ठ से स्वीकार करते हैं। अपनी लिखी जीवनियों में हिन्दी के लिये उनकी यह प्रतिज्ञा जहां-तहां देखने को मिल ही जायेगी। उनका उद्देश्य यह है कि अधिक से अधिक ऐसे शब्दों का चयन जो कुछ देर बाद पाठकों के लिये अज्ञात न रहें और इस तरह हिन्दी का शब्द भंडार बढ़ता रहे। आज से बहुत वर्ष पहले एक नारा उठा था जिसे 'हिन्दुस्तानी भाषा' का नाम दिया गया था और ऐसा नारा लगाने वालों का एक उद्देश्य विशेष था—हिन्दी से ऐसे शब्दों का बहिष्कार जो मुसलमानों को पसन्द न हों, परन्तु वह नारा लगान वाले सफल नहीं हुए, बल्कि कहीं-कहीं वैसी खिचड़ी भाषा हंसी बन कर रह गई। लाला सन्तराम जी ने अपनी सभी पुस्तकों में—विशेष कर जोवनी लेखन में इस प्रकार की उपहासात्मक भाषा से दूर रहने का ही प्रयास किया है और इस प्रयास में वे सफल रहे हैं। परन्तु इसका यह अभिप्राय भी नहीं कि इन्होंने संस्कृत शब्दों से ही रचनाओं को लाद कर भारी बना दिया हो। उनकी रचनाओं में प्रयोग किए गए शब्द, मुहावरे लोकोक्तियों और रीति-रिवाज सम्बन्धी शब्द यह सिद्ध करते हैं कि लाला जी भाषा के लिये उदार-हृदय हैं।

लाला जी ने जीवनी-साहित्य द्वारा बाल एवं युवक वर्ग के हृदय में जिस उत्साह प्रेरणा एवं साहस का संचार किया है वह सदा ही इस वर्ग के लिये स्फूर्दियाक बनगा ऐसी मेरी धारणा है।

— — —

भाव-विह्वल हो जाते हैं। कहा भी है :—

The songs that we hear with our ears is only
the song that is sung in our heart. Ovida.

लड़की पिता को सम्बोधन करत हुए—चरखा कातते हुए—यह गीत गाती है जो वहुत लोकप्रिय है :—

गीत ह (१७२)

"साडा चिड़ियाँ दा चंबा वे बावल असीं उड़ जाना।
साडी लम्बी उडारी वे बावल केहड़े देश जाना।

तेरे ताकां दे विच वे बावल साडियां गुडियां रुलन।
मेरियां खेडन पोतरियां जाइए घर जा अपने।

शृंगार रस के गीत :—प्रेम के विना संसार की स्थिति सम्भव नहीं। स्त्री पुरुष के आकर्षण में यहीं प्रेम शृंगार रस के रूप में परिणत हो जाता है। इस अलौकिक प्रेम रस के अमृत का जिसने पान नहीं किया उसने संसार में कुछ नहीं किया। आइये कुछ गीतों से इसका रसास्वादन करें।

गीत—सि० (२४१)

"उच्चे उच्चे जांदिये मुटियारे नी
कण्डा चुभ्भा तेरे पैर बांकिए नारे नी,
तैनूं कंडे दी की पई वे सिपाहिया वे,
तूं ते राहे तुरेआ जा कि असीं तेरे महरम नहीं।"

ढोला कै (२७३)

"छतरी दी छां करके, असीं ढोला मिलसां, लम्बियां बांह करके
दो पत्र अनारां दे, सड़ गई जिदड़ी लग गए ढेर अंगारां दे।
फुल पीले किकरां दे, इकवारी मेल रब्बा फेर कदीं न बिछुड़ांगे
दो पत्र शहतूतां दे, अक्ख मस्तानी पतले होंड़ मशूकां दे।

संयोग और वियोग में —वियोग के गीतों में अधिक भाव विह्वलता, व्याकुलता विद्यमान रहती है संयोग का सुख तो व्यक्ति अकेले में प्राप्त करके सुखी हो जाता है वियोग का समय एकान्त में भी नहीं कटता तो भी उस समय व्यक्ति एकान्त में मन की व्यथा को गीतों

भाव-विह्वल हो जाते हैं । कहा भी है :—

The songs that we hear with our ears is only
the song that is sung in our heart. Ovida.

लड़की पिता को सम्बोधन करत हुए—चरखा कातते हुए—यह गीत गाती है जो बहुत लोकप्रिय है :—

गीत ह (१७२)

"साडा चिड़ियाँ दा चंबा वे बावल असीं उड़ जाना ।
साडी लम्बी उडारी वे वावल केहड़े देश जाना ।

तेरे ताकां दे विच वे वावल साडियां गुडियां रुलन ।
मेरियां खेडन पोतरियां जाइए घर जा अपने ।

श्रृंगार रस के गीत :—प्रेम के विना संसार की स्थिति सम्भव नहीं । स्त्री पुरुष के आकर्षण में यहीं प्रेम श्रृंगार रस के रूप में परिणत हो जाता है । इस अलौकिक प्रेम रस के अमृत का जिसने पान नहीं किया उसने संसार में कुछ नहीं किया । आइये कुछ गीतों से इसका रसास्वादन करें ।

गीत—सि० (२४१)

"उच्चे उच्चे जांदिये मुटियारे नी
कण्डा चुभा तेरे पैर वांकिए नारे नी,
तैनूं कंडे दी की पई वे सिपाहिया वे,
तूं ते राहे तुरेआ जा कि असीं तेरे महरम नहीं।"

ढोला कै (२७३)

"छतरी दी छां करके, असीं ढोला मिलसां, लम्बियां बांह करके
दो पत्र अनारां दे, सड़ गई जिंदड़ी लग गए ढेर अंगारां दे ।
फुल पीले किकरां दे, इकवारी मेल रब्वा फेर कदीं न विछुड़ांगे
दो पत्र शहतूतां दे, अक्ख मस्तानी पतले होंठ मशूकां दे ।

संयोग और वियोग में —वियोग के गीतों में अधिक भाव विह्वलता, व्याकुलता विद्यमान रहती है संयोग का सुख तो व्यक्ति अकेले में प्राप्त करके सुखी हो जाता है वियोग का समय एकान्त में भी नहीं कटता तो भी उस समय व्यक्ति एकान्त में मन की व्यथा को गीतों

भी । उनके जीवन-चरित्रों में जहां बुद्ध पत्नी यशोधरा है और बुद्ध शिष्या विशाखा है, वहां ईसाई धर्मावलम्बिनी अगथा भी है, शैव मतानुयायिनी अहल्याबाई है तो रामभक्त शबरी भी। दुर्गावती है तो लक्ष्मीबाई भी। बंगाल के रवीन्द्र नाथ हैं तो गुजरात के गांधी भी हैं। उनकी यह समदर्शिता ही उन्हें सच्चा और निष्पक्ष जीवनी लेखक सिद्ध करती है।

अंत में जीवनी लिखने की शैली के सम्बन्ध में कुछ शब्द कह लेना आवश्यक है। लाला जी विशुद्ध हिन्दी-भक्त हैं और अपने इस "विशुद्ध' रूप को व मुक्त कण्ठ से स्वीकार करते हैं। अपनी लिखी जीवनियों में हिन्दी के लिये उनकी यह प्रतिज्ञा जहां-तहां देखने को मिल ही जायेगी। उनका उद्देश्य यह है कि अधिक से अधिक ऐसे शब्दों का चयन जो कुछ देर बाद पाठकों के लिये अज्ञात न रहें और इस तरह हिन्दी का शब्द भंडार बढ़ता रहे। आज से बहुत वर्ष पहले एक नारा उठा था जिसे 'हिन्दुस्तानी भाषा' का नाम दिया गया था और ऐसा नारा लगाने वालों का एक उद्देश्य विशेष था—हिन्दी से ऐसे शब्दों का बहिष्कार जो मुसलमानों को पसन्द न हों, परन्तु वह नारा लगाने वाले सफल नहीं हुए, बल्कि कहीं-कहीं वैसी खिचड़ी भाषा हंसी बन कर रह गई। लाला सन्तराम जी ने अपनी सभी पुस्तकों में—विशेष कर जीवनी लेखन में इस प्रकार की उपहासात्मक भाषा से दूर रहने का ही प्रयास किया है और इस प्रयास में वे सफल रहे हैं। परन्तु इसका यह अभिप्राय भी नहीं कि इन्होंने संस्कृत शब्दों से ही रचनाओं को लाद कर भारी बना दिया हो। उनकी रचनाओं में प्रयोग किए गए शब्द, मुहावरे लोकोक्तियों और रीति-रिवाज सम्बन्धी शब्द यह सिद्ध करते हैं कि लाला जी भाषा के लिये उदार-हृदय हैं।

लाला जी ने जीवनी-साहित्य द्वारा बाल एवं युवक वर्ग के हृदय में जिस उत्साह प्रेरणा एवं साहस का संचार किया है वह सदा ही इस वर्ग के लिये स्फूर्तिदायक बनेगा ऐसी मेरी धारणा है।

SHRI SANT RAM

P. THIRUVENGADAM

At the remote Village of Purani Basi in Hoshiarpur District, East Punjab, lives Sant Ram in his late sixties, exiled from the scene of his glorious achievements in Lahore. His has been indeed, a dedicated life. He waged a major war against the caste system, all on his own, and he succeeded in giving the old demon a bad shake. It is no discredit to him that he attempted the impossible and that the demons is still very much alive and kicking. If the great Buddha failed to destroy caste, where is the chance for another to succeed ? But to Sant Ram belongs the credit of repeating the performance of Buddha in recent history. His life deserve close study by very rationalist.

Sant Ram was born in 1886, the son of a merchant who traded with Central Asia. At the age of twenty, while he was studying in the Government College at Lahore, he tested the bitterness of caste. When his Brahmin fellow students learnt that Sant Ram was born in the artisan caste of sudras, the lowest of the four castes, they objected to interdine with him in the college hostel. The principal was on the side of orthodoxy. But Sant Ram insisted on the inherent right of every member of the hostel to participate in the common mess. By sheer persistence, Sant Ram carried the day, but his young heart turned sour at the inhumanity of caste : the iron entered into his soul.

He graduated in 1909. Starting life as a Journalist, he edited for a short while two Hindi monthlies, the Usha and the Bharati. Later he changed his professsion and served in several schools as teacher and as headmaster. At the National College he was appointed as editor of text-books. For many years he was the examiner of University papers.

KRISHI ASHRAM

In 1918 he established a farm the Krishi Ashram, at Patti, in Lahore District. He allowed the farm hands including the untouchables and Muslims to freely intermingle with the higher caste Hindus. He used bone meal to manure his fields. Since the bones might belong to dead cows which were held sacred, orthodox Hindus threatened Sant Ram and brought pressure on his family to force him

to give up the use of bone meal. Sant Ram did not budge. He again came into conflict with orthodoxy over the engagement of a Muslim woman as the cook at the farm. This displeased the Sikh Peasants who threatened to boycott him. But they had not the strength to carry out their threat. Sant Ram was actually boycotted by the villagers when he took interest in the son of a shoemaker who belonged to the untouchable caste. He not only educated the shoemaker's boy but he took food with him and allowed him to draw water from the well. This aroused the anger not only of the Hindus but even of the Muslims. Muslim servants left his service for they could not take food served by one who was polluted by the shoemaker. Sant Ram was then a member of the Arya Samaj, the movement intended to revive faith in the Vedas. A number of Arya Samajists brought charges against him for not believing in the Hindu scriptures and in the principle of Varna Ashrama which underlay the caste system. He was impeached in the Samaj Mandir. Sant Ram turned the tables on his accusers by asking them if they believed in all the scriptures including the Kok Shastra, the art of Hindu erotics.

Gargi, the only daughter of Sant Ram, is a graduate. She started school at Lahore for Scanvenger girls in her father's house as no one else would lease out accommodation for fear of pollution by the untouchables. She educated the untouchable girls, allowed them free access to her kitchen and encouraged them to cook her food and to eat with her.

THE MANDAL

Sant Ram's greatest achivement was the starting of the JATPAT TORAK MANDAL, the anti caste association, at Lahore in 1922. Sant Ram was the sole architect and the chief executive of the Mandal. He was its life and its soul. The declared aim of the association was to abolish caste, root and branch. It functioned as a revolutionary organisation. It waged war against the mighty hordes of Hindu orthodoxy. It had to swim against the current of the worship of the Vedas that was sweeping the country in the wake of the Nationalist movement against foreign political domination. People were subjected to the propaganda that since the foreign British rule was an evil, everything foreign was evil. Contrarily, everything Indian was considered good

including the superstitions of Hinduism of which caste was the outstanding feature. The Mandal counteracted this fallacy by exposing the inherent evils of the indigenous caste system.

The membership of the Mandal was open to every Hindu of not less than 18 years of age in the case of men and 16 years in the case of women. Every member was pledged to break caste in his or her marriage (if he or she remained unmarried on the date of enrolment) and to marry his or her sons and daughters out of his or her caste.

In the beginning Sant Ram and his Mandal were ignored and scoffed at by the orthodox. But when the movement progressed and attracted the youth, the scoffers were amazed and finally they got into a terrific fright and moved heaven and earth to pull down the Mandal and destroy its founder.

Sant Ram requested Bhai Parmanad to be the first President of the Mandal. By marrying his daughter out of caste Parmanand passed off as an ardent reformer. But later it was discovered that he has really orthodox and owed alligiance to the Hindu Sabha. He even went to the extent of using his personal influence over Sant Ram to attempt to change the revolutionary name of the Jat-Pat Torak Mandal to the comparatively tame and reactionary name of Hindu Samya Vad Mandal. A Hindu millionaire came forward with the tempting offer of a donation of ten thousand rupees to the Mandal if Sant Ram would consent to change its name as suggested by Parmanand. Sant Ram spurned the offer and held fast to the original name of the Mandal with its revolutionary significance.

Mrs. Rameshwari Nehru once adorned the presidential chair of the Mandal. It happened at that time in Hyderabad, Daccan, that the untouchables were driven to embrace Islam due to ill-treatment by the Hindus. Commenting upon this Sant Ram expressed the view that the growing antagonism of the Muslims and the demand for the partition of India were the inevitable results of the Hindus caste system. As a consequence of his expression of that opinion, Sant Ram was reviled at even by his own followers and accused of being in the pay of the Nizam. Mrs. Rameshwari Nehru issued a statement defending Sant Ram and declaring that his opinion was the out pouring of a heart heavy with the misery of the underdog in Hindu society.

WITH AMBEDKAR

Dr. B. R. Ambedkar, the leader of the millions of untouchables, is Sant Ram's personal friend. In 1936 Ambedkar was elected President of the Mandal. But the Hindus of Lahore, including several members of the Mandal opposed the election of an untouchable to preside over a Hindu body and threatened to meet the President-elect with a black flag demonstration. Sant Ram did not like to submit his illustrious friend to the dishonour and annoyance of such an ugly demonstration. So Ambedkar did not personally preside at the conference but his address was read at the conference and printed and published as a pamphlet.

WITH GANDHI

Sant Ram met Mahatma Gandhi and argued with him about caste. Although in later years he was forced to change his views, there was a time when Gandhi believed in and advocated the caste system with great vehemence. Gandhi declared the four fold divisions of Hindu society to be fundamental, natural and essential and asserted that the caste system was the best possible means of attaining social stability since every body under that system inherited the profession of his father thus avoiding the cut-throat competition which was the bane of life under other systems. Sant Ram went on a deputation of the Jat Pat Torak Mandal and interviewed Gandhi at Lahore and had a heated discussion. The following notes, preserved of his questions, are interesting:—

"Mahatmaji—It may be a good thing for a Brahman a Kshatriya or a Vaisya boy to inherit the profession of his father, but how can it be in the interest of a scavenger boy to continue to remove night-soil and clean latrines simply because his forefathers had to do the dirty job ?

Mahatmaji you are a Bania by caste. Your hereditary profession is to sell salt, oil and flour. Why don't you go and earn your living by vending grocery instead of getting into politics ?"

These queries seemed to have induced only the loud laughter of the Mahatma in which his wife Kasturji Bai and Seth Jamna Lal Bajaj joined.

WITH LAJPAT RAI

In defending the cause of the untouchables and the touchable Sudras, Sant Ram had to cross swords with the Lion of the Punjab, Lala Lajpat Rai. Lajpat Rai who was the leader of the Arya Samajists was so taken up with the revival of the Vedic religion that he igroned the problem, of caste and was annoyed that Sant Ram raked up the question of equality of the submerged untouchables and sudra castes.

To support the cause of the Mandal, Sant Ram started two monthlies, the Kranti and the Yugantir in Hindi. They had a wide circulation and they carried the message of the Mandal to all nooks and corners of Northern India. In 1933 Sant Ram was arrested by the Punjab Government for having written and published in the Kranti a poem in Urdu entitled "O TYRANT RULER YOU WILL PERISH SOON." When the Government found out that the Ruler in the Poem referred to the caste system which was personified as the tyrant and had no political reference, the charge was withdrawn. Under the auspices of the Mandal, Sant Ram conducted innumerable inter-caste marriages without the intervention of any priests or the performance of religious ceremonies and rituals. On Sant Ram's representations, the Government permitted people not to declare their castes in the census returns of 1941. About seven to eight lakhs of people availed themselves of this privilege in Punjab and did not declare that they belonged to any particular caste.

WITH JINNAH

To solve the problem of Hindu-Muslim Unity Sant Ram attempted many devices. His Krishi Ashram at Patti and the Muslims who were made to work together for the achievement of common purposes. His interview with Jinnah was remarkable. He discussed with the Muslim leader the problem of bringing the Hindus and the Muslims into one fold.

"There are Muslims in China. There are Muslims like Lord Madey in England". Sant Ram asked Jinnah, "but they do not claim Arabic as their mother-tongue in preference to the English language nor do they claim Mohammad Gazni and Rustum as their heroes in preference to Cromwell and Nelson. They do not assert that their culture, their

history and their social and political interests are different from those of Christian Englishmen. How is it that in India the moment a person embraces Islam he begins to repudiate his mother-tongue and claims that his language is Urdu, that he repudiates the tradition of Rama and Krishna and asserts that his heroes are Rustum and Haroon and that his culture, his history and his social and political interests are said to be distinct and separate from those of the Hindus."

Mr, Jinnah's reply was characteristic : "The reason is that in England they do not socially boycott a convert to Islam, the Muslim English man is not treated as an untouchable. In India ever since we embraced Islam we have been made the victims of a cruel social boycott by the Hindus. That is why our language, our culture and our history have become separate from those of the Hindus. Shivaji and Pratap, heroes of the Hindus, are our enemies, while Aurangazeb who is our hero is the enemy of the Hindus. In the defeat of the Hindus lies our victory and in our victory their defeat. By their social boycott of us, their politics, their social and economic interests have become separate from ours." Who can deny there was truth in Jinnah's declaration ? Was it not that truth that flared up at the partition of India and caused the mass murders and the uprooting of millions of families ?

THE END OF THE MANDAL

Among the several calamities that accompanied th partition of India, one of the worst was that it sounded the death Knell of the Jat-Pat Torak Mandal. Lahore became foreign territory for all Hindus however Liberal their views might be and they had to leave it poste-haste at the peril of their lives. Sant Ram had to abandon his beloved mandal with all its properties worth many lakhs at Lahore which was included in Pakistan and he emigrated to East Punjab in Inida with a heavy heart and an empty purse. He took refuge in his grand-father's house at Purani Basi where he now lives with his wife. His Journals the Kranti and the Yugantir which carried on the crusade against caste system, came to a sudden end. Every avenue for carrying on his mission was closed to Sant Ram and he had to reconcile himself to comparative inactivity in the evening of his eventful life.

He has written and translated as many as fifty books in Hindi and contributed hundreds of articles to various periodicals. He has published Pamphlets in Hindi and in Urdu decrying the caste system. His magnum opus, written in simple and elegant Hindi, is entitled Hamara Samaj. In it he speaks from his heart about the evil of caste. It has 20 chapters and 214 pages and is priced Rs. 6.00. A Telugu translation of this work has already been published. Attempts are being made to bring out a Tamil edition.

DOMESTIC HAPPINESS

Having lost his first wife Sant Ram married in 1929 Sundar Bai Pro-othan a Maharashtrian virgin widow. This marriage was notable for three reason. It was a widow-Marriage and inter-caste marriage and an interprovincial marriage. The marriage proved a success. The couple are devoted to each other. At his village home in Purani Basi, Sant Ram takes a daily walk with his wife in the evenings. During his walks he carries a long stout cane in his hand. He has developed cataract, but he is carrying on correspondence with his former colleagues who have dispersed to different parts of India. His wife is well-versed in Hindi and is assistang him in his literary work She looks more like a South Indian than a Maharashtrian or a Punjabi. We wish Sant Ram and his wife peaceful enjoyment of their well earned rest.

अभिनन्दन पत्र

जो

भारत के सुप्रसिद्ध हिन्दी साहित्यकार पं० सन्त राम जी, बी० ए०

को

उनकी साहित्य–सेवाओं के उपलक्ष्य में हिन्दी विभाग, पंजाब, की

ओर से २६ मार्च, १९६१ को

भेंट किया गया।

आदरणीय श्री सन्त राम जी,

हिन्दी विभाग, पंजाब के लिये यह सौभाग्य का विषय है कि आज हम अपने वयोवृद्ध एवं कर्मठ साहित्यकार के अभिनन्दन का शुभ अवसर प्राप्त कर रहे हैं। आपने अपनी जीवन–साधना द्वारा साहित्य और समाज के क्षेत्रों में जिन उच्च आदर्शों की प्रतिष्ठा की है उसके लिये न केवल पंजाब अपितु समग्र देश और भारती–समाज आपका चिर ऋणी है।

आदरणीय,

भारत–भारती और उसके साहित्य की श्री–वृद्धि के लिये आपने जो अमूल्य योगदान दिया है उसे किसी परिचय की आवश्यकता नहीं। पंजाब में हिन्दी के प्रचार और प्रसार का काम आपने तब आरम्भ किया था जब सरकार के राज–दरबार और लोगों के कार्य–व्यवहार में हिन्दी की अवस्था बहुत ही शोचनीय थी। तब महाऋषि दयानन्द से प्रेरणा पाकर तथा महात्मा गान्धी के चरण–चिन्हों पर चलकर पंजाब में जिन महानुभावों ने राष्ट्रवाणी हिन्दी के उद्धार का बीड़ा उठाया उन में आपका स्थान प्रमुख है। बचपन से उर्दू–फारसी में शिक्षा–दीक्षा पाकर भी आपने एकदम अपना मार्ग बदल दिया था और हिन्दी के माध्यम द्वारा राष्ट्रोद्धार को ही अपने जीवन का चरम लक्ष्य बना लिया था।

मान्यवर,

आपका यह दृढ़ विश्वास रहा है कि समूचे भारत राष्ट्र को भावनात्मक एकता के सूत्र में बांधने वाली शक्ति केवल हिन्दी ही है। इसी लिये आपने सन् १९४१ में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अबोहर अधिवेशन के अवसर पर स्पष्ट शब्दों में घोषणा की थी कि मेरी धारणा है कि हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है। वह समूचे राष्ट्र को एकता के सूत्र में बांध सकती है। यह हमें भारत भूमि से प्रेम करना सिखाती है।

अपनी इसी भावना को साकार रूप देने के लिये आपने अब तक अपनी ७४ रचनाओं

के विविध मनोमोहक फूल भारत–भारती के चरणों में अर्पित किये हैं। सस्ती लोकप्रियता या आर्थिक लाभ की चकाचौंध से अप्रभावित रहकर आपने सदा समाज और देश के लिये उपयोगी विषयों पर ही लेखनी चलाई है। एक ओर आपने भारत के महापुरुष, अतीत, कथा, वीर गाथा, बड़े लोग, रसीली कहानियां जैसी रचनाएं लिखकर बालकों के लिये उपयोगी मनोरंजन की सामग्री जुटाई है तो दूसरी ओर हमारा समाज, अन्तर्जातीय विवाह ही क्यों, भारत का भविष्य——जैसी रचनाएं देकर समाज और देश के विनाशक रोगोंका विवेचन किया और उन्हें दूर करने के उपाय भी सुझाए। आप के दृष्टिकोण के अनुसार जाति–पांति के बन्धनों में बंधा हुआ भारतीय समाज कभी एक सुखी और स्वतन्त्र परिवार का रूप नहीं ले सकता इसी लिये आपने जहां लोक शिक्षा, आदर्श पत्नी, हमारे बच्चे जैसी पुस्तकें लिखकर जीवन का आदर्श रूप प्रस्तुत किया वहां उषा, युगान्तर और "क्रान्ति" नामक पत्रों के संचालन और सम्पादन द्वारा क्रान्तिकारी समाज–सुधार की प्रेरणा भी दी है

महाप्राण,

ध्येय के प्रति इतनी गहरी निष्ठा, स्पष्ट–वादिता किन्तु साथ ही साथ जो कुछ कहना या लिखना उसे अपने जीवन में भी चरितार्थ कर दिखाना आप जैसे महा–प्राणव्यक्ति का ही कार्य है। सामाजिक विरोधों, साहित्यिक आक्षेपों और आर्थिक अड़चनों के फलस्वरूप आपने अपने जीवन में अनेक कष्ट झेले किन्तु चट्टान के सदृश सदैव दृढ़ रहे। हिन्दी प्रचार, साहित्य–सेवा और समाज–सुधार का तिरंगा झंडा लेकर आप सदा अपने पथ पर बढ़ते ही रहे––और आज तक बढ़ते चले आ रहे हैं। आपकी इसी सत्य–निष्ठा और कर्तव्य–परायणाता से प्रभावित होकर राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी ने सिद्धांत रूप में आप से पूर्ण सहमति प्रकट करते हुए कहा था कि मैं आपका ही काम कर रहा हूं। आप के इन्हीं सद्गुणों के उपलक्ष्य में १९५८ में राष्ट्र–भाषा प्रचार समिति वर्धा ने आपको १५०१ रुपये का महात्मा गान्धी पुरस्कार प्रदान किया। इससे पहले भारत की केन्द्रीय सरकार ने आपकी "अलबैरूनी का भारत" नामक रचना पर १२०० रुपये, "इत्सिंग की भारत यात्रा" पर ६०० रुपये और आपकी प्रथम पुस्तक पर १०० रुपये के पुरस्कारों द्वारा आपको सम्मानित किया।

आज पंजाब सरकार और भाषा विभाग आपका हार्दिक सम्मान करते हुए यह आशा और विश्वास प्रकट करते हैं कि आप भविष्य में भी अपनी अमूल्य रचनाओं द्वारा इसी प्रकार भारत–भारती के भण्डार की श्रीवृद्धि करते हुए देश तथा मानवता के कल्याण के लिये पहले की भांति साहित्य–साधना करते रहेंगे।

डायरैक्टर,
हिन्दी विभाग, पंजाब,
पटियाला।

श्री सन्तराम जी द्वारा प्रणीत पुस्तकों की सूची

१—हिमालय निवासी महात्माओं के अन्तिम दर्शन,
(उर्दू) । सन् १९१२ । प्रकाशक सर्वश्री मुंशी हीरा लाल ऐण्ड संज, होशियारपुर ।

२—मानसिक आकर्षण द्वारा व्यापारिक सफलता ।
अंग्रेज़ी से अनुवाद । सन् १९१६ । प्रकाशक—इण्डियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद ।

३—अलबेरुनी का भारत । पहला भाग । अरबी पुस्तक का अनुवाद ।
सन् १९१६ ।

४—एकाग्रता और दिव्य शक्ति Concentration and acquirement of personal magnetism पुस्तक का अनुवाद । सन् १९१७ । प्रकाशक गांधी पुस्तक भण्डार, बम्बई तथा साहित्य भवन, प्रयाग ।

५—गुरुदत्त लेखावली । पं० गुरुदत्त विद्यार्थी के अंग्रेज़ी लेखों का अनुवाद ।
सन् १९१८ प्रकाशक महाशय राजपाल, सरस्वती आश्रम, लाहौर ।

६—कौतूहल भण्डार । सन् १९१८ । प्रकाशक मिश्र बन्धु-कार्यालय, जबलपुर ।

७—मानव जीवन का विधान । अंग्रेजी Economy of human life से अनुवाद
सन् १९२३ । प्रकाशक, इण्डियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद ।

८—आदर्श पत्नी। सन् १९२४। प्रकाशक महाशय राजपाल सरस्वती आश्रम, लाहौर, दिल्ली ।

९—आदर्श पति। सन् १९२४। प्रकाशक महोदय राजपाल सरस्वती आश्र, लाहौर, काश्मीरी गेट, दिल्ली ।

१०—अलबेरूनी का भारत । दूसरा भाग । सन् १९२४ ।
प्रकाशक इण्डियन प्रेस इलाहाबाद ।

११—विवाहित प्रेम । अंग्रेजी से अनुवाद । सन् १९२५ । प्रकाशक महाशय राजपाल, सरस्वती आश्रम, लाहौर ।

१२—कर्म योग अंग्रेज़ी से अनुवाद । सन् १९२५ । प्रकाशक, गंगा पुस्तक-माला कार्यालय, लखनऊ ।

१३—इत्सिंग की भारत यात्रा । अनुवाद । सन् १९२५ । प्रकाशक इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।

१४—पंजाबी गीत । सन् १९२६ । प्रकाशक महाशय राजपाल, सरस्वती आश्रम, लाहौर ।

१५—दम्पत्ति मित्र । सन् १९२६ । गर्भ विरोध की विधियां । प्रकाशक महाशय राजपाल, सरस्वती आश्रम, लाहौर ।

१६–शिशु पालन । सन् १६२६ । प्रकाशक महाशय राजपाल ।

१७–रति–विज्ञान । सन् १६२६ । काम–शास्त्र की पुस्तिका प्रकाशक साहित्य–सदन, लाहौर और अब साधु आश्रम, होशियारपुर से प्राप्य ।

१८–रसीली कहानियां । सन् १६२७ । प्रकाशक, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।

१६–भारत में बायबिल । दो भाग । सन् १६२८ । प्रकाशक गंगा पुस्तक माला कार्यालय लाटूश रोड, लखनऊ ।

२०–अलबैरुनी का भारत । तीसरा भाग । सन् १६२८, प्रकाशक, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।

२१.–काम कुंज । सन् १६२६ । प्रकाशक, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ ।

२२.–स्वर्गीय संदेश । सन् १६२६ । प्रकाशक जात पांत तोड़क मंडल, लाहौर ।

२३.–दयानन्द । सन् १६३० । प्रकाशक, इण्डियन प्रेस, प्रयाग ।

२४–अतीत कथा । सन् १६३० । प्रकाशक, दास ब्रदर्स, लाहौर ।

२५.–नीरोग कसा । सन् १६३०, प्रकाशक, इण्डियन प्रेस, प्रयाग ।

२६–रति विलास अंग्रेजी से अनुवाद । सन् १६३१ । प्रकाशक, नारायणदत्त सहगल एण्ड संज़, लाहौर ।

२७–सद्गुणी बालक, सन् १६३२
प्रकाशक, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।

२८–बाल सद्बोध सन् १६३२ यथोपरि

२६–वीर बाजीराव । मराठी में अनुवाद । सन् १६३३ । प्रकाशक रा० सा० मुंशी गुलाब सिंह एंड संज़, लाहौर ।

३०–दयालु माता । सन् १६३३ । प्रकाशक तरुण भारत ग्रन्थावली, दारा गंज, प्रयाग ।

३१–सद्गुणी पुत्री, सन् १६३३ । प्रकाशक, तरुण भारत ग्रन्थावली कार्यालय, दारा गंज, प्रयाग ।

३२—बच्चों की बातें । सन् १६३५ । प्रकाशक. इण्डियन प्रेस इलाहाबाद ।

३३–रचना प्रदीप । सन् १६३६ । लाहौर ।

३४–वीर गाथा । सन् १६३७ । प्रकाशक स्वाध्याय सदन, लाहौर ।

३५–सुन्दरी सुबोध । सन् १६३७ । इण्डियन प्रेस, प्रयाग ।

३६–जान जोखिम की कहानियां, सन् १६३८ इण्डियन प्रेस, प्रयाग ।

३७–विश्व की विभूतियां । सन् १६३६ । इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।

३८–स्वदेश विदेश–यात्रा । सन् १६४० इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।

३६—लोक व्यवहार । सन् १६४० How to win friends and Influence people का अनुवाद ।

४०–महिला मणिमाला, सन् १६४१ । प्रकाशक मेहरचन्द लक्ष्मणदास, लाहौर ।

४१–रणजीत चरित । सन् १६४३ । प्रकाशक हिन्दी भवन माई हीरां गेट, जालन्धर सिटी ।

४२–भारत के महापुरुष । सन् १९४३ । हिन्दी भवन, जालन्धर ।

४३.–सुशील कन्या । सन् १९४५ । इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।

४४–हरिसिंह नलवा । सन् १९४६ । राजपाल एण्ड संज़, लाहौर ।

४५–हमारा समाज । सन् १९४८ । वि० वै० संस्थान, साधु आश्रम, होशियार पुर ।

४६.–सुखी परिवार । सन् १९५० । साधु आश्रम, होशियारपुर ।

४७–हमारे बच्चे । सन् १९५० । प्रकाशक, साधु आश्रम, होशियारपुर ।

४८–उद्बोधिनी । सन् १९५१ । इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद,।

४९–व्यवहारिक ज्ञान सन् १९५१ । साधु आश्रम होशियारपुर ।

५०–देश देशान्तर की कहानियां । सन् १९५१ । वि० वै० संस्थान साधु आश्रम, होशियारपुर ।

५१–पंजाब की कहानियां । तीन भाग । सन् १९५२ । प्रकाशक, हिन्दी भवन, अड्डा होशियारपुर जालन्धर नगर ।

५२–फलाहार । सन् १९४२ । साधु आश्रम होशियार पुर ।

५३–सफलता के सिपाही । सन् १९५४ । राजपाल एण्ड संज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली –६ ।

५४–लोक विजय । सन् १९५४ । साधु आश्रम, होशियारपुर ।

५५–चमत्कारों की दुनिया । सन् १९५५ । साधु आश्रम , होशियारपुर ।

५६–सेवा कुंज । सन् १९५४ । साधु आश्रम, होशियारपुर ।

५७–रसभरी कहानियां । सन् १९५४ । साधु आश्रम, होशियारपुर ।

५८–स्काऊट बच्चों की कहानियां । सन् १९५५ । प्रकाशक हिन्दी भवन अड्डा होशियारपुर जालंधर नगर ।

५९–अच्छी अच्छी कहानियां । सन १९५६ । साधु आश्रम, होशियारपुर ।

६०–जादू की नाव । सन् १९५६ । हिन्दी भवन, जालन्धर ।

६१–मन बहलाव की कहानियां । सन् १९५६ । हिन्दी भवन, जालन्धर ।

६२–नदी की कहानी । सन् १९५६ । हिन्दी भवन, जालन्धर ।

६३–सुनहली कहानी । सन् १९५६ । हिन्दी भवन, जालन्धर ।

६४–नदी किनारे की कहानी । सन् १९५६ । हिन्दी भवन, जालन्धर ।

६५–आनन्द का जीवन । सन् १९५७ । हिन्दी भवन, जालन्धर ।

६६–दादी की कहानियां । सन् १९५७ । हिन्दी भवन, जालन्धर ।

६७–महाजनों की कहानिया । सन् १९५८ । इण्डियन प्रेस, प्रयाग ।

६८–बड़े लोग । सन् १९५९ । साधु आश्रम, होशियारपुर ।

६९–शिष्टाचार । सन् १९५९ । साधु आश्रम, होशियारपुर ।

७०–जीने की कला । सन् १९६१ । राजपाल एण्ड, संज, जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली ।

७१–पहाड़ी प्रदेशों की कहानियां । सन् १९६१ । राजकमल प्रकाशन फैज बाजार, दिल्ली–६

७२–सफल विक्रेता, सन् १९६१ । इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।

७३–आनन्दमय विवाह । प्रेस में । गंगा पुस्तकालय, लखनऊ ।

७४–मेरे जीवन के अनुभव । प्रेस में । साधु आश्रम, होशियारपुर ।

TITUTE OF ADV
Acc. No.
67
S LA

Library IIAS, Shimla
H 818 Sa 59 S
00021869